जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायी

[तंत्री : पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार संपादक – ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, सोनगढ़]

हम पंच परमेष्ठी के भक्त हैं

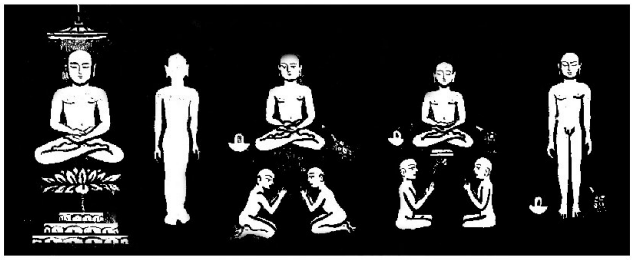

किसी व्यक्ति ने एक धर्मी-श्रावक से प्रश्न किया—क्या तुम साधु को मानते हो, या नहीं ?

धर्मी श्रावक ने विवेकपूर्वक कहा—जी ! हम पाँचों परमेष्ठी भगवंतों को मानते हैं; अत: जो भी उन पंच परमेष्ठी भगवंतों के पद में विराजमान हो, उन सबको हम अवश्य मानते हैं। अत: यदि वे साधु भी उन पंच परमेष्ठी भगवंतों में आ जाते हो तो उन्हें भी हम अवश्य मानते हैं। पंच परमेष्ठी की पंक्ति में वे हैं या नहीं, इसका विचार आप ही कीजिये।

जगत में अनंत सिद्ध भगवंतों, लाखों अरिहंत भगवंतों तथा करोड़ों मुनि भगवंतों—उनको अपने ज्ञान में ले करके हर रोज पंच नमस्कार मंत्र के द्वारा परम भक्ति से हम उनके प्रति नमस्कार करते हैं।

अरे, पंच परमेष्ठी भगवंतों—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—ये तो जगत में सर्वोत्तम मंगलरूप हैं, उन्हें कौन नहीं मानेगा ? ऐसा कौन जैन-बच्चा है—जो पंच परमेष्ठी को न माने ? और उन्हें वंदन न करें ? इंद्र और चक्रवर्ती का सिर भी जिनके चरन में झुक जाये, ऐसे वे रत्नत्रयवंत भगवंत—उनका आदर कौन धर्मात्मा नहीं करेगा ? अहो, उनके साक्षात् दर्शन की तो क्या बात !—उनके नाम का स्मरण भी मंगलरूप है।

अहा, ऐसे पंच परमेष्ठी पद में जो विराजते हो, उन्हें 'दूसरे लोग मुझे मानते हैं या नहीं'—उसकी चिंता नहीं होती। चैतन्यपद में लीनता है, तब फिर बाह्य में इंद्रादि कौन नमते हैं—तथा कौन मिथ्यादृष्टि लोग नहीं नमते—यह देखने की वृत्ति ही कहाँ है ? वे तो निरपेक्ष हैं; परंतु उनके गुण देखकर अन्य जीव को प्रमोद अवश्य आता है; यदि गुण को देखकर भी प्रमोद न आया तो उसे धर्मप्रेम कैसा ?

पंच परमेष्ठीपद तो जगत्पूज्य है, आत्मा का परम इष्ट पद है; ऐसे पंच परमेष्ठी को देखकर भी उनके चरणों में जिसका सिर नहीं झुकता, वह जैन कैसा ?—मुमुक्षु कैसा ? जैन-मुमुक्षु का हृदय तो पंच परमेष्ठी के देखते ही उनके गुणों के प्रति परम भक्ति से नम्रीभूत हो जाता है; अहो ! रत्नत्रय के भंडार ! आपके जैसे गुणों की प्राप्ति के लिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ। णमो लोए सव्वसाहूणं

भगवान नेमिनाथ का वैराग्य-चिंतन

सुना सुना रे संसार!
असार असार रे संसार!
चेतनपद मेरा ही सार,
सुंदर जिसमें शांति अपार!

मैंने देखा संसार असार
ऐसे संसार में नहीं जाऊँ,
नहीं जाऊँ नहीं जाऊँ रे...
मेरा चेतनपद है सार,
चैतन्यपद में मैं लीन होऊँ
लीन होऊँ लीन होऊँ रे...

चैतन्य साधनामय जिनका जीवन है, चैतन्य के वीतरागी आनंद का स्वाद जिन्होंने चख लिया है, ऐसे भगवान राजकुमार नेमिनाथ विवाह के लिये जब जूनागढ़ की ओर पधार रहे थे—कि इतने में कृत्रिम हिंसा का दृश्य, बंधनग्रस्त दुःखी पशुओं की करुण चित्कार, तथा राज्य के लिये संसार का मायाचार देखकर तुरंत ही भव-तन-भोग से विरक्त हो गये, और वैराग्य से चिंतन करने लगे कि अरे, कैसा असार संसार! और मेरे लग्न के समय यह हिंसा?—ऐसे संसार में मैं अब क्षणमात्र भी नहीं रह सकता। मेरा अवतार संसार के भोग के लिये नहीं है, परंतु आत्मा के मोक्ष के लिये मेरा अवतार है।

— बस, ऐसा सोचकर वे तो चले गये गिरनार के सहस्त्रआम्रवन में! और चैतन्य की ऐसी शांति में लीन हुए कि, उनकी शांति से प्रभावित वह आम्रवन आज भी उनकी याद दिला रहा है।

वाह, प्रभु नेमनाथ का वैराग्यजीवन! और उनकी अद्‌भुत आत्मसाधना! उनकी मधुर बातें सुनना चाहते हो और उनकी शांति का नमूना देखना हो तो आईये गिरनार के सहस्त्रआम्रवन में!

सम्यक्त्व-जीवन

[सम्यक्त्व-लेखमाला : लेखांक (९) संकलन ब्र. हरिलाल जैन]

सम्यक्त्व के लिये मुमुक्षु जीव का जीवन कैसा होता है ? सम्यक्त्व की भावना करते-करते उसके अंतर में कैसे भाव होते हैं ? तथा सम्यक्त्व होने के बाद कैसा सुंदर उसका जीवन होता है ?—इसके बारे में आठ लेखों का संकलन इस लेखमाला में किया जायेगा; इसके पहले आठ लेख आत्मधर्म के पिछले वर्ष में तथा सम्यग्दर्शन-पुस्तक (गुजराती) के पाँचवें भाग में छप चुके हैं। मुमुक्षु के लिये यह लेखमाला बहुत ही उपयोगी रहेगी। (संपादक)

आत्मसन्मुख जीव को पहली ही चोट में राग के पोषक ऐसे कुदेव-कुगुरु का सेवन अंतर से छूट जाता है अर्थात् गृहीत मिथ्यात्व उसने छोड़ दिया है; और सच्चे देव-गुरु-धर्म जो आत्मा की सत्य शांति का मार्ग दिखानेवाले हैं—वे उसको अतिशय प्रिय लगते हैं; अत: अपने ज्ञान में उनके स्वरूप का अच्छी तरह निर्णय करके उनका अनुसरण करने लगता है। नव तत्त्व के भावों को जैसा है, वैसा विचार में लाता है; शुभराग इत्यादि बंधभावों को निर्जरा में नहीं गिनता; एवं उनसे सम्यग्दर्शनादि संवर-निर्जरा होने का नहीं मानता। नव तत्त्व जिसप्रकार है, उसीप्रकार ज्ञान में अच्छी तरह से जानता है।

उसे पाँचों इंद्रियों के विषयों में से सुखबुद्धि हटती जाती है और आत्मा के सुख का रंग लगता है। माँस-मद्य-मदिरा-अंडे को तो वह छूता भी नहीं, और जुआ-सिनेमा-रात्रिभोजन आदि के तीव्रपाप से भी वह दूर रहता है। अरे, जिसमें शांति की झाँकी भी नहीं, ऐसे निष्प्रयोजन पापकार्य उस शांति के चाहक जीव को कैसे अच्छा लगें ? उसको सत्समागम, वीतराग का पूजन-भक्ति, आत्मशांति के प्रतिपादक ग्रंथों का पठन-मनन इत्यादि में रस आता है। उसमें जो शुभ परिणाम होता है, उसको तथा उस समय के ज्ञानरस के घोलन को वह भिन्न-भिन्न

पहचानता है; और उनमें से राग के भाग को वह धर्म का साधन नहीं मानता। राग से रहित ज्ञानरस कैसा है, वह ज्ञानी से एवं शास्त्र से समझकर अपने वेदन से उसका निर्णय करता है।

ज्ञानी की अनुभूति के अनुसार अभ्यास करते-करते अपने निर्णय को दृढ़ करता है, उसका रस बढ़ता जाता है और बाहरी अन्य बातों का रस टूटता जाता है। इसप्रकार उसे मोह का जोर टूटता जाता है और ज्ञान का जोर बढ़ता जाता है। इस तरह अपने परिणाम को अन्य कार्यों से हटाकर अंतर में भेदज्ञान की स्फूरणा करता है। जैसे कि मैं एक शुद्ध ज्ञायक हूँ; मेरे ज्ञायकतत्त्व की परिणति भी ज्ञानरूप है, उसमें द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म नहीं हैं। मैं असंख्यप्रदेशी अपने अनंत गुण से पूर्ण स्वतंत्र हूँ; मेरे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से मैं परिपूर्ण हूँ, और अन्य वस्तु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से मेरा कोई संबंध नहीं है। मैं तथा परद्रव्य सभी स्वतंत्र हैं, अतः परद्रव्य में मैं कुछ नहीं कर सकता, एवं परद्रव्य मेरे में कोई लाभ-नुकसान नहीं कर सकते—ऐसी समझ के कारण उसे पर के प्रति निरपेक्ष वृत्ति होती है, अतः पर में राग-द्वेष या क्रोध-मानादि कषाय का रस बहुत कम हो गया है। बाहर के कार्यों में उसे हठाग्रह नहीं रहता अपितु वह समाधान कर लेता है, अतः उसे आकुलता भी कम होती है; अपनी शक्ति को वह चैतन्य में ही केन्द्रित करने के लिये प्रयत्नशील है।

इसप्रकार ज्ञानी के द्वारा जानकर बार-बार अभ्यास के द्वारा आत्मा का महिमा दृढ़ करता जाता है। अब चित्त की एकाग्रता से आत्मा का बार-बार अभ्यास करते-करते आत्मा में लीन होने की उत्सुकता जगी है। अन्य सभी विकल्पों से हटकर एक अपने आत्मा के ही चिंतन की गहराई में बार-बार चला जाता है। अभी गुण-गुणी भेद के विकल्प हैं किंतु उस विकल्प से जुदा ज्ञान लक्ष में लिया है। अतः विकल्प में अटकना नहीं चाहता। इसप्रकार वह जीव ज्ञानस्वभाव के आँगन में आया है। अभी तक निर्विकल्प स्वसंवेदन नहीं हुआ है, फिर भी स्वभाव के स्वसंवेदन के लिये कटिबद्ध हो चुका है—इसके लिये पुरुषार्थ तैयार होने लगा है। राग से ज्ञान का जोर बढ़ रहा है। बार-बार ऐसा पुरुषार्थ करते-करते आत्ममहिमा का चैतन्यरस जब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचता है, तब उसका उपयोग सूक्ष्म विकल्प से भी यकायक भिन्न होकर, इंद्रियातीत अंतरस्वभाव में अभेदरूप हो जाता है अर्थात् निर्विकल्प हो जाता है। ऐसी निर्विकल्प अनुभवदशापूर्वक भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है तथा

उसके साथ ही कोई अपूर्व आनंद व अपूर्व शांति का वेदन होता है। बस, यहीं से जीव मोक्षमार्ग में प्रविष्ट हो जाता है।

अहा, यह दशा धन्य है... कृतकृत्य है।
ऐसी दशावाले आराधक जीव वंदनीय है॥

अब सम्यग्दर्शन होने के बाद उसका रहन-सहन तथा विचारधारा किसप्रकार की होती है ?—यह देखिये

जीव को जब सम्यग्दर्शन होता है, तब उसे पूर्व में जो कभी नहीं आया था, ऐसा अपूर्व आनंद प्रगट होता है। आत्मा का अनुभव होने से वह स्व को तथा पर को सम्यक् प्रकार से भिन्न-भिन्न जानता है। ऐसे एकत्व-विभक्त आत्मा की प्रतीति उसे निरंतर चौबीसों घंटे रहा करती है; अब जगत के पर ज्ञेयों को पहले की अपेक्षा अपूर्व रीति से जानता है, क्योंकि पर को सचमुच में पररूप से पहले कभी नहीं जाना था। अब पर में आत्मबुद्धिरूप भ्रांति दूर हो गई है, अत: पर को जानता हुआ भी उनसे विरक्तभाव (भिन्न बुद्धि) रहता है; वह परभाव का कर्ता नहीं होता परंतु उनसे भिन्न चेतनारूप ज्ञाता ही रहता है। चैतन्यसुख का आस्वाद ले लिया है, इसलिए अब पर में कहीं भी सुखबुद्धि या इष्टबुद्धि स्वप्न में भी नहीं होती; वह स्वानुभवपूर्वक स्वसमय तथा परसमय को अत्यंत भिन्न जानता है, उसने केवलज्ञान का बीज अपने में बो दिया है, अतीन्द्रिय-आनंद के अंकुर भी प्रगट हो चुके हैं; उसकी दृष्टि में पूर्ण आत्मा का स्वीकार हो चुका है; उसे अनंत गुण के निर्मल परिणमन से भरपूर अनुभूति निरंतर रहती है; अभी परिणमन में जो कमी है तथा राग-द्वेष शेष है, उसे भी वह ज्ञानी अपना अपराध समझता है; राग को जानते हुए भी उसका ज्ञान स्वयं राग से जुदा ही रहता है। बाह्य की करनी यथापदवी होती है। जैसे कि, सर्वज्ञपरमात्मा तथा निर्ग्रंथ गुरुओं के प्रति आदर, जिनवाणी की स्वाध्याय, धर्मात्मा-साधर्मी के प्रति प्रेम, बारंबार आत्मस्वरूप का मनन उसे होता है, तथा गृहकार्य, व्यापार-धंधा, राज्यकारभार इत्यादि गृहसंबंधी बाह्य-प्रवृत्ति में भी लगता है, तत् संबंधी अशुभपरिणाम भी उसे होता है—परंतु उसमें अनंत रस नहीं होता। बाह्य प्रवृत्ति तो अज्ञानी की तथा सम्यग्दृष्टि की

स्थूलता से एक सी दिखे, परंतु अंतर के अभिप्राय में तथा परिणाम के रस में दोनों के बीच में बड़ा भारी अंतर होता है।

अज्ञानी को चैतन्यसुख के स्वाद की तो अनुभूति नहीं है, अत: वह अन्यत्र कहीं न कहीं सुख मानता है; और जिसमें सुख माने, उसमें आत्मबुद्धि करे ही करे; इसप्रकार वह अज्ञानी भ्रम से ऐसी कल्पना करता होता है कि देह ही मैं हूँ, मनुष्य मैं हूँ, पर का कार्य मैं करता हूँ, पर में से मुझे सुख मिलता है। ज्ञानी के तो ऐसी भ्रमणा का अत्यंत अभाव होने से उसके अंतरंग आचरण में कोई बड़ा भारी फर्क पड़ गया है—जो कि बाह्यदृष्टि से नहीं दिखता। ज्ञानी को, स्वरूप के अस्तित्व का तथा उसमें पर के नास्तित्व का अच्छी तरह भेदज्ञान होने से वह निज-आत्मा को निजरूप से तथा पर को पररूप से सम्यक् प्रकार जानता है; अत: पर के साथ एकत्वबुद्धि का बंधन तो उसे होता ही नहीं।;

चारित्र की अपेक्षा से जो राग-द्वेष है, उसका बंधन होता है परंतु वह अल्प है, उससे अनंत संसार में रुलना नहीं होता। जबकि, अज्ञानी के शुभभाव हो तो भी, उस राग से भिन्न अपने चैतन्य का भान उसे न होने से (राग के वेदन को ही आत्मा का स्वरूप मानने से), उसे मिथ्यात्व के कारण अनंत संसार में भ्रमण होता है।

चतुर्थगुणस्थान के प्रारंभ में जीव को एकबार शुद्धोपयोगपूर्वक स्वरूप का संचेतन हो चुका है, वह कभी नहीं भुलाता; और फिर-फिर ऐसे निर्विकल्प उपयोग के लिये भावना रहती है तथा अंतर में निरंतर ऐसी भावना रहती है कि मैं संसार से विरक्त होकर कब मुनि होऊँ और स्वरूप में लीन रहकर पूर्ण सुखमय हो जाऊँ! सर्वज्ञस्वभाव का तथा क्रमबद्धपरिणमन का भी उसे निर्णय होता है। जबतक पूर्णपद की प्राप्ति न हो, तबतक भेदज्ञान चालू है, और पूर्णता के लक्ष से जो प्रारंभ किया है, उसकी साधना चालू है, अब थोड़े समय में पूर्णपद को अवश्य प्राप्त करेगा।

— सम्यग्दर्शन का यह प्रताप है।

जय सम्यग्दर्शन

आत्मा की अनुभूति के बिना सब निष्फल है

[सम्यक्त्व जीवन लेखमाला : लेखांक १०]

सम्यक्त्व के बिना सब निष्फल है—ऐसा समझकर जिज्ञासु जीव आत्मा की पहिचान में तत्पर होता है। अंतर में परम स्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा के सन्मुख होने पर ही परमतत्त्व की प्राप्ति होती है, और आनंद का खजाना अपने में ही दृष्टिगोचर होता है।

जड़ शरीर के अंगभूत इंद्रियाँ, वे कहीं आत्मज्ञान की उत्पत्ति का साधन नहीं होती। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव को ध्येय बनाकर जो ज्ञान होता है, वही आत्मा को जाननेवाला है।—ऐसे ज्ञान की अनुभूति से सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाने पर मुमुक्षु को अपना आत्मा सदैव उपयोगस्वरूप ही जानने में आता है।

सम्यग्दर्शन होने के पहले जिज्ञासु को देव-गुरु-धर्म के ऊपर श्रद्धा होती है, और व्यवहारधर्म का आराधन अपनी समझ के अनुसार वह करता है; जिनपूजा-दया-दान-स्वाध्याय इत्यादि में वह रस लेता है; परंतु जब उसे ज्ञानीगुरु का उपदेश प्राप्त होता है और खबर पड़ती है कि आत्मा के सम्यग्दर्शन के बिना यह सब मोक्ष के लिये कुछ भी कार्यकारी नहीं हैं,—तब उसे सम्यक्त्व की भावना जागृत होती है, और वह आत्मा की समझ में रस लेता हुआ उसे साधने का प्रयत्न करने लगता है। उसे देव-गुरु-धर्म के सत्य स्वरूप की पहचान होने लगती है; व्यावहारिक धर्मप्रवृत्ति का रस कम होने लगता है, और उसके मन का झुकाव निश्चयधर्म की ओर ढलने लगता है; उसे पंच परमेष्ठी के स्वरूप को द्रव्य-गुण-पर्याय से पहचानकर उनके जैसे अपने आत्मस्वरूप को जानने की जिज्ञासा रहती है; और अपने सभी उद्यम को उसी में केन्द्रित करता है। किसी भी तरह से आत्मस्वरूप के ज्ञान का संपादन करना ऐसा जो जिनवाणी का उपदेश है, उसमें वह रस लेने लगता है।—

तास ज्ञान को कारन स्व-पर विवेक बखानो;
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो।

मेरा आत्मा किसप्रकार अपने धर्मस्वरूप होवे, सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन तथा आत्मशांति मेरे को कैसे प्राप्त हो?—उसी का रटन रहता है। स्वसन्मुख होकर आत्मा को प्रत्यक्ष किये बिना, बाहर का अभ्यास जीव ने अनंतबार किया, और व्यवहारधर्म में संतोष कर लिया है; परंतु आत्मा की प्रत्यक्षता के बिना अकेला बाहरी ज्ञान, वह सत्यज्ञान नहीं है; अत: जब तक मेरा आत्मा मेरे प्रत्यक्ष वेदन में न आवे, तब तक मैंने सचमुच में कुछ भी नहीं जाना।—इसप्रकार जीव को जब तक अपना अज्ञानीपन न दिखे, तथा अन्य परलक्षी जानकारी में अपनी अधिकता दिखे, तब तक आत्मा की अनुभूति का सत्यमार्ग उसको प्राप्त नहीं होता।

अंतर में परम स्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा है, उसके सन्मुख होने से ही परमतत्त्व की प्राप्ति होती है और मोक्षमार्ग खुलता है। आत्मा के सम्मुख देखे बिना, अर्थात् स्वसंवेदन किये बिना अज्ञानदशा में जितना हो सके, उतना शुभभाव भी जीव ने किया, अनेक शास्त्र का पठन भी किया, किंतु इससे आत्मकल्याण का मार्ग जरा भी प्राप्त नहीं हुआ।—

अब क्यों न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से!

ज्ञान को परविषय से भिन्न करके स्वविषय में लगावे, तभी मार्ग को सच्ची आराधना होती है। इंद्रियज्ञान के व्यापार में ऐसी ताकत नहीं है कि आत्मा को स्वविषय बना करके जाने। आत्मा स्वयं परमात्मा है, उसे अपना ज्ञान करने के लिये इंद्रिय की या राग की कुछ भी अपेक्षा नहीं है। इसलिये श्रीगुरु कहते हैं कि आत्मा पामर नहीं है परंतु प्रभु है। यह आत्मा ऐसा नहीं है कि जो इंद्रियज्ञान से अनुभव में आ जाये। ज्ञान जब इंद्रिय का आलंबन छोड़कर स्वालंबी होता है, तब आनंद का भंडार आत्मा में ही दिखता है। वह स्वयं अपने स्वभाव के अवलंबन से जिस ज्ञानरूप परिणमता है, वह ज्ञान मोक्ष को साधनेवाला है। ये इन्द्रियाँ तो देह के अंगभूत हैं, वे कहीं आत्मा के ज्ञान की उत्पत्ति का साधन नहीं हैं। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभावी आत्मा है, वह स्वयं साधन बनकर जो ज्ञान हो, वही आत्मा को जानता है। पुण्य-पाप उसका स्वरूप नहीं है, राग की रचना आत्मा का कार्य नहीं है। आत्मा का सत्य कार्य (अर्थात् परमार्थ लक्षण) तो ज्ञानचेतना है। उस चेतनास्वरूप से अनुभव में लेने से ही आत्मा सत्यस्वरूप से अनुभव में आता है। ऐसे आत्मा को स्वानुभूति में लेने से ही जीव सम्यग्दृष्टि होता है।

सम्यग्दर्शन होने के बाद मुमुक्षु को आत्मा सदैव उपयोगस्वरूप ही दिखता है; वह अपने उपयोग को कभी जड़रूप या रागरूप नहीं मानता। उसका उपयोग बाहर से नहीं लाया जाता, परंतु आत्मा स्वयमेव उपयोगरूप है;—इसप्रकार राग से पार जो उपयोग काम करता है, वही आत्मा का परमार्थ लक्षण है।

सम्यग्दृष्टि जानते हैं कि रागादि भाव मेरे उपयोग से विरुद्ध स्वभाववाला है; जड़-चेतन का सत्य पृथक्करण उनकी समझ में आ चुका है, और अपना सत्यस्वरूप सदा उपयोगस्वरूप ही दिखता है। उन्हें ज्ञान और राग की भिन्नता का यथार्थ निर्णय होता है, और उस निर्णय में नव तत्त्वों की परमार्थ श्रद्धा भी आ जाती है।

उस सम्यग्दृष्टि को चैतन्यस्वरूप से परिपूर्ण अपने आत्मा में सावधानी होती है; उसकी परिणति का उत्साह निजस्वरूप की ओर ढलता है। अब कोई राग या परद्रव्य अपने स्वरूप के साथ एकत्वरूप उसे नहीं दिखता। ऐसा भेदज्ञान भी सम्यग्दर्शन के साथ में ही होता है, एवं आत्मा के आनंदमय स्वभाव की अनुभूति भी हो जाती है। अहा, यह कोई अपूर्व कृतकृत्य दशा है।

ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन होने के बाद, जो अल्प राग शेष रह जाए, उसके कारण इस जीव को कदाचित् एक-दो कोई उत्तम भव करना पड़े, तो भी उन भव में उन्हें चैतन्य की आराधना का अपूर्व सुख रहा करता है; तथा संयोग रूप से बाह्य में भी उन्हें विशिष्ट उत्तम पुण्य का योग बनता है, फिर भी वे उसका स्वामी नहीं होते। वे जानते हैं कि ये पुण्य के ठाट तो विकल्प का फल है। ज्ञान को और विकल्प को आपस में कारण-कार्यभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव आनंदमय है। आनंद की पर्याय पुण्य से नहीं होती; परवस्तु या रागभाव कारण हो करके आत्मा को आनंद नहीं दे सकते। मेरा आत्मा स्वयं ही स्वाधीनरूप से साधन होकर, अन्य किसी की सहाय के बिना ही, अपने अतीन्द्रिय-ज्ञान तथा आनंदरूप कार्य करने की सामर्थ्यवाला है। मेरे यह स्वाभाविक कार्य में मुझे अन्य किसी के आलंबन की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इसप्रकार अपनी निजशक्ति के विश्वास से सावधान होकर आत्मसाधना करते-करते वे बन जाते हैं-परमात्मा! यह सब प्रताप है सम्यक्त्व का!

जो पूरव शिव गये जाय अरु आगे जै हैं,
सो सब महिमा ज्ञानतनो मुनिराज कहे हैं॥

अपूर्व शांति पाने के लिये आत्मा को पहचानो

[लेखांक - २]

दुनियाँ में कहीं भी सच्ची शांति हो तो वह आत्मा में ही है, और आत्मा के जानने से ही उसका वेदन होता है। जिनमार्गी संतों ने ऐसी अपूर्व शांति प्राप्त की है, और ऐसी शांति के पिपासु भव्य जीवों को वे कहते हैं कि तुम भी ऐसी अपूर्व शांति पाने के लिये आत्मा को पहचानो। आत्मा की पहचान करानेवाला एक सुगम शास्त्र 'समाधि-शतक' है; उसके प्रवचनों का दोहन आप इस लेखमाला में पढ़ेंगे।

(संपादक)

अपूर्व शांति पाने के लिये आत्मा को पहचानने का कहा; तब प्रश्न होता है कि आत्मा कितने प्रकार का है ? और उनमें से कैसा आत्मा उपादेय है ? तथा कैसा आत्मा हेय है ?

इसके उत्तर में आत्मा की तीन दशा समझाकर, उनमें हेय-उपादेय किसप्रकार है, यह दिखलाते हैं। सामान्यतः तो सभी आत्मा उपयोगस्वरूप है; पर्यायअपेक्षा से उसके तीन प्रकार हैं—बहिर् आत्मा, अंतर् आत्मा, तथा परमात्मा। इनमें से अंतरात्मारूप उपाय के द्वारा परमात्मपने को उपादेय करो तथा बहिरात्मपने को छोड़ो।

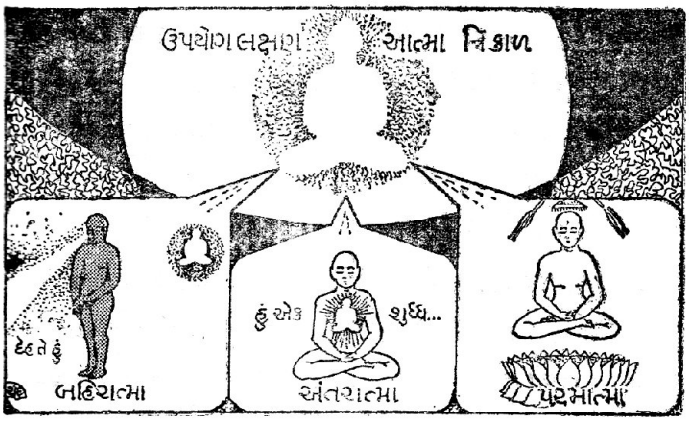

- ❀ जो बाह्य शरीरादि पदार्थों को ही आत्मा मानता है, वह बहिरात्मा है।
- ❀ जिसके अंतर में शरीरादि से भिन्न ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा का भान है, वह अंतरात्मा है।
- ❀ जिसने परम चैतन्यशक्ति को खोलकर सर्वज्ञपद प्रगट किया है, वह परमात्मा है।

— ऐसे तीन प्रकार में से सर्वज्ञता और परिपूर्ण आनंदरूप ऐसा परमात्मपना परम उपादेय है; अंतरात्मपन इसका उपाय है, और बहिरात्मपन छोड़ने योग्य है। परमात्मा होने का साधन क्या ?—कि अंतरात्मपना, सो परमात्मा होने का साधन है। अंतर में परमात्मशक्ति भरी है, उसकी प्रतीत करके उसमें से ही परमात्मदशा प्रगट होती है; इसके सिवाय बाहर में अन्य कोई उसका साधन है ही नहीं। आत्मा के अंतर अवलोकन में कोई बाह्य जीव न सहायक है, न विघ्नकर। ऐसे अंतरस्वभाव की दृष्टि करने से अंतरात्मपन होता है, और बाह्य में आत्मबुद्धिरूप बहिरात्मपना दूर हो जाता है। इसप्रकार जो अंतरात्मा हुआ, वह अंतर्शक्ति में एकाग्र होकर परमात्मा बन जायेगा। इसतरह हेयरूप ऐसे बहिरात्म भाव को छोड़ने का तथा उपादेयरूप ऐसा परमात्मभाव प्रगट करने का उपाय अंतरात्मभाव है। यह अंतरात्मभाव कर्मादि से भिन्न ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा के जानने से ही होता है, अतः यहाँ भिन्न आत्मा का स्वरूप कहा जाता है।

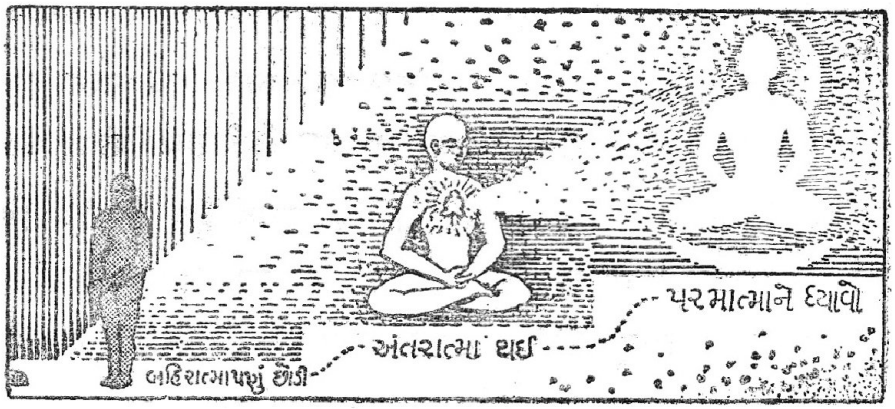

बहिरात्मपना छोड़कर ..... अंतरात्मा होकर..... परमात्मा को ध्यावो

ये बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा—तीनों में से एक समय एक दशा व्यक्त होती है। बहिरात्मदशा के समय अंतरात्मपना या परमात्मपना नहीं होता; अंतरात्मदशा के समय परमात्मदशा या बहिरात्मदशा नहीं होती; तथा परमात्मदशा के समय अंतरात्मदशा या बहिरात्मदशा नहीं होती। अरिहंत तथा सिद्ध भगवान परमात्मा है; ४ से लेकर १२ गुणस्थान तक के साधक जीव सभी अंतरात्मा हैं; और मिथ्यादृष्टि जीव बहिरात्मा है।

बहिरात्मदशा के समय भी आत्मा की शक्ति में परमात्मा होने की ताकत विद्यमान है।

भगवान ने समवसरण में ऐसी दिव्य घोषणा की कि अरे जीवो! तुम्हारे आत्मा में परमात्मशक्ति भरी हुई है, उसका विश्वास करो। जो जीव अपनी परमात्मशक्ति का विश्वास करता है, वह बहिरात्मभाव से छूटकर अंतरात्मा होता है, और वह अपनी चैतन्यशक्ति में लीन होकर परमात्मा बन जाता है।

इसप्रकार जो पहले बहिरात्मा थे, वे ही अपनी शक्ति के अवलंबन से अंतरात्मा तथा परमात्मा हुए। परमात्मा होने की ऐसी ताकत प्रत्येक आत्मा में है।

देखो, परमात्मा होने का अर्थात् मोक्षसुख की प्राप्ति का उपाय अपने में ही दिखलाया; शुद्धस्वभाव के अनुभवरूप जो अंतरात्मदशा है, वही मोक्षसुख का उपाय है। इसके अतिरिक्त बाह्य के कोई भाव मोक्षसुख का उपाय नहीं है।

मैं शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप हूँ, ज्ञान-दर्शनस्वरूप एक शाश्वत आत्मा ही मेरा है, इसके सिवाय संयोगलक्षणरूप कोई भाव मेरे नहीं हैं, वे मेरे से बाह्य है—ऐसा भेदज्ञान करके, आत्मा के अंतरस्वभाव में आत्मबुद्धि करना, यह अंतरात्मपना है। ऐसे अंतरात्मरूप साधन के द्वारा परमात्मदशा प्रगट करने का प्रयत्न करना चाहिये।

- ❀ शरीरादि बाह्य पदार्थों में जो आत्मभ्रांति करते हैं, वे बहिरात्मा है।
- ❀ राग-द्वेषादि परभाव, तथा चैतन्यस्वरूप स्वभाव, इन दोनों की भिन्नता के संबंध में भ्रांति जिनको नहीं है, अंतर में चैतन्यस्वरूप को ही आत्मरूप से जानते हैं, वे अंतरात्मा हैं। वे रागादि दोष को दोषरूप जानते हैं, और चैतन्यभाव को स्वभावरूप जानते हैं। उन्हें रागादि में आत्मभ्रांति नहीं होती। मलिनता से भिन्न अपने शुद्धस्वभाव को वे निःशंकरूप से वेदते हैं।
- ❀ जो अत्यंत निर्मल है, जिनके रागादि दोष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, और परम सर्वज्ञपद जिनको प्रगट हुआ है, वे परमात्मदेव हैं।

ऐसे तीन प्रकार के आत्मा का स्वरूप जाननेवाला जीव बहिरात्मभाव को छोड़कर अंतरात्मभाव प्रगट करता है और परमात्मपद को साधता है। अतः हे जीवो! अपूर्व शांति पाने के लिये आत्मा को पहिचानो।

गृहस्थ का जीव भी अपने ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा को पहचानकर अंतरात्मा हो सकता है; अभी कुछ राग-द्वेष होते हुए भी, आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप है—ऐसा सम्यक् भान उसे रहता है। वह सम्यक्त्वी-धर्मात्मा जीव-अजीवादि तत्त्वों को भ्रांतिरहित यथार्थरूप से जानता है। जीव को जीवरूप जानता है, रागादि को रागादिरूप जानता है, तथा देहादि को अजीवरूप जानता है। देहादि को या रागादि को वह आत्मा का स्वरूप नहीं मानता।

- जीव है तो ज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप है।
- देहादिक अजीव है, वे जीव से भिन्न है।
- राग-द्वेष-अज्ञान दु:खरूप भाव हैं, अतएव वे आस्रव तथा बंधरूप है।
- सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव जीव को सुखरूप है। अत: वे संवर-निर्जरा-मोक्षरूप हैं।

ऐसे सभी तत्त्वों को सम्यक्रूप से जानकर, जो एक ज्ञानानंदस्वरूप अपने आत्मा में ही आत्मबुद्धि करते हैं, देहादिक को अपने से बाह्य जानते हैं, राग-द्वेष-अज्ञान को दु:खरूप जानकर छोड़ते हैं, तथा सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को सुखरूप जानकर अंगीकृत करते हैं—ऐसे जीव को अंतरात्मा कहने में आता है। ऐसा अंतरात्मपन चतुर्थ गुणस्थान से प्रारंभ होकर बारहवें गुणस्थान तक होता है।

चैतन्य स्वभाव को देहादि से भिन्न जानकर उसके अवलंबन से सर्वज्ञता तथा आत्मा का स्वाधीन अतीन्द्रिय आनंद प्रगट करनेवाले भगवान परमात्मा सर्वज्ञ, वीतराग एवं परम हितोपदेशक है। वे स्वयं सर्वज्ञ-वीतराग हुए, और अन्य जीवों के लिये भी अंतरंगस्वरूप के अवलंबन से सर्वज्ञ-वीतराग होने का ही उपदेश दिया।

भगवान का उपदेश वीतरागता का है, राग करने का भगवान का उपदेश नहीं है। यदि राग लाभकारी होता तो भगवान स्वयं राग छोड़कर वीतराग क्यों हुए? और जो वीतराग हुए, वे राग से लाभ कैसे मनावे? राग से लाभ होने का उपदेश भगवान का है ही नहीं। राग से लाभ होगा—ऐसा जो उपदेश है, वह हितोपदेश नहीं है किंतु अहितोपदेश है, क्योंकि राग तो अहित है, हित तो वीतरागता ही है।

यह जिनमार्ग का अपूर्व हितोपदेश है; जीव ने पूर्व में कभी ऐसे आत्मा की श्रद्धा या पहचान नहीं की। ज्ञानस्वभाव का लक्ष करना, यही परम हित का मार्ग है, और ऐसे हित का ही उपदेश भगवान ने किया है, अर्थात् ज्ञानस्वभाव की सन्मुख होने का ही भगवान का उपदेश है। पराश्रय करने का भगवान का उपदेश नहीं है, उसे तो छोड़ने का भगवान का उपदेश है। जो ऐसी पहचान करे, उसने ही भगवान परमात्मा को तथा उनके हितोपदेश को पहचाना है। परंतु जो राग को लाभकारी माने, उसने हितोपदेशी सर्वज्ञ-वीतराग परमात्मा को नहीं पहचाना एवं न उनके उपदेश को भी जाना।

समयसार में कहा है कि एकत्व-विभक्त आत्मा का अनुभव ही जैनशासन है। कर्म-बंध से रहित एवं पर के संबंध से रहित ऐसा शुद्ध ज्ञायकस्वभाव, उसको सन्मुख होकर उसका अनुभव करना, यही जैनशासन है, और जो अपने ऐसे आत्मा की अनुभूति करे, उसको ही परमात्मा की परमार्थ पहचान होती है कि अहो! राग से भिन्न होकर जो अतीन्द्रिय आनंद का अंश मेरे वेदन में आया, उसी जाति का (परंतु उससे अनंत गुण अधिक) परिपूर्ण आनंद परमात्मा को प्रगट है, और वे सर्वथा रागरहित हो चुके हैं। इसप्रकार अंश के साक्षात् वेदनपूर्वक पूर्णता की प्रतीत होने से साधक को उसके प्रति वास्तविक भक्ति और बहुमान आता है। परमात्मा के प्रति जैसा भक्ति-बहुमान ज्ञानी के अंतर में होता है, वैसा अज्ञानी के नहीं होता।

जैनशासन में गुण को पहचानकर नमस्कार किया जाता है। गुणवाचकरूप से सभी परमात्मा जिनवरों को 'सीमंधर' अथवा 'महावीर' कहा जाता है, क्योंकि वे सभी भगवंतों स्वरूप की सीमा को धारण करनेवाले हैं तथा महान आत्मवीर्य के धारक हैं।—इसप्रकार गुण के स्वरूप से परमात्मा को पहचानने की प्रधानता है। और, परमात्मा के जितने भी गुणवाचक नाम हैं, इस आत्मा को भी स्वभाव अपेक्षा से वे सब लागू होते हैं, क्योंकि स्वभाव से तो यह आत्मा भी परमात्मा जैसा ही है। परमात्मा के गुणों को पहचानकर परमात्मा का स्वरूप जो जानता है, उसे आत्मा के परमार्थस्वरूप की भी पहचान अवश्य होती है और उसके भवदु:ख का अंत आता है।

देखो भाई! दु:ख तो जगत में किसी को भी प्रिय नहीं लगता। ज्ञानियों को जगत के दु:खी जीवों के प्रति करुणा आती है। स्वयं अज्ञान से दु:ख का जो त्रास भोग चुका, और अब

आत्मज्ञान होने पर वह दु:ख छूट गया, तो ऐसे दु:खों से अन्य जीव भी छूटे—ऐसी सहज करुणा ज्ञानी को होती है। अरेरे! ये अज्ञानी जीव बेचारे अपने स्वरूप को भूलकर महान दु:ख के समुद्र से डूबे हुए हैं, उससे तिरने के उपाय की भी उसे खबर नहीं है। मैं जो परिपूर्ण सुख को प्राप्त करना चाहता हूँ—वह सुख अन्य जीव भी पावे—ऐसी अनुमोदना ज्ञानी के होती है।

हे भाई! मिथ्यात्व का फल बहुत कड़ा है, यह जानकर इस मिथ्यात्व का सेवन तुम सर्वथा छोड़ दो, और आत्मस्वरूप की समझ करो, जिससे तुम्हारा हित होगा। इसप्रकार हित के लिये ही ज्ञानी का उपदेश है।

जो जीव सत्य समझे, वह धन्य है, उसके संसार का एक-दो भव में अंत आ जायेगा।

आत्मा का परिपूर्ण आनंद जिनको प्रगट है, वे परमात्मा हैं। वे परमात्मा परिपूर्ण ज्ञानसहित है; अनादि-अनंत काल को वैसा ही अपने दिव्यज्ञान में वे प्रत्यक्ष जानते हैं। जिसका कहीं भी अंत नहीं, ऐसे अलोकाकाश को भी वे प्रत्यक्ष परिपूर्ण जानते हैं, उनके दिव्यज्ञान का कोई अचिंत्य सामर्थ्य है। ज्ञान ने अनादि-अनंत आकाश को प्रत्यक्ष जान लिया। अत: ज्ञान में उसका अंत भी दिखा होगा—ऐसा नहीं है; यदि अंत दिखने में आये तो फिर अनादि-अनंतपना कहाँ रहा? अत: ज्ञान ने तो अनादि-अनंत को अनादि-अनंतरूप से ही जाना है। ज्ञान की यह कोई अचिंत्य महिमा है। अज्ञानी को अनादि-अनंत काल की महानता भासती है, परंतु ज्ञान का सामर्थ्य उससे अनंतगुणित महान है, वह उसको नहीं दिखता; और ज्ञानस्वभाव की महिमा प्रतीत में आये बिना इस बात का समाधान और किसी भी प्रकार नहीं हो सकता; काल का अनादि-अनंतपना उसको बड़ा लगता है, परंतु ज्ञान का अनंत सामर्थ्य उसको बड़ा नहीं लगता, इसी कारण उसको यह शंका होती है कि 'ज्ञान अनादि-अनंत को कैसे जाने?' उसमें वास्तव में तो उसको ज्ञान के सामर्थ्य की ही शंका है। काल के अनादि-अनंतपने से भी ज्ञानसामर्थ्य महान है—ऐसा जब विश्वास करे, तभी उसे यह बात समझ में आ सकती है कि अनादि-अनंत का ज्ञान किसप्रकार होता है। अहा! अचिंत्य ज्ञानसामर्थ्य में काल का अनादि-अनंतपना तो सहज में ही ज्ञेय बन जाता है, इतना ही नहीं, अपितु काल से भी अनंतगुणा महान ऐसा आकाश भी उसमें परिपूर्ण प्रमेय बन जाता है। ऐसा महान ज्ञान और अतीन्द्रिय आनंद जिनको परिपूर्ण प्रगटा है, ऐसे परमात्मा की पहिचान से अपूर्व भेदज्ञान तथा शुद्धात्म-अनुभूति होती है।

सर्वज्ञ की स्तुति करते हुए साधक कहते हैं कि हे अरिहंत परमात्मा! आप स्वयं मोक्षमार्ग की विधि (अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) को धारण करके मुक्त हुए और हमारे लिये भी उसी मुक्तिमार्ग का विधान किया। अतः आप ही हमारे विधाता हो; और हमको मोक्षमार्ग में ले जानेवाले नेता भी आप ही हो। (-मोक्षमार्गस्य नेतारं... वंदे तद्गुणलब्धये।)

अतीन्द्रिय आत्मा से विरुद्ध जो इंद्रियाँ, उनसे आत्मा कैसे जाना जाये? आत्मज्ञान से पराङ्मुख बहिरात्मा इंद्रियों के द्वारा शरीरादि बाह्य पदार्थों के ही जानने में तत्पर है। आत्मा तो उसे दिखता नहीं; अतएव वह शरीर को ही आत्मा मान लेता है। उसको देहाध्यास होने से देह से भिन्न अपना कोई अस्तित्व दिखता ही नहीं। वह ज्ञान को बाह्य में जोड़ता है परंतु अंतर में नहीं लगाता। बाह्य में इंद्रियों के अवलंबन से तो जड़ दिखने में आता है, कहीं आत्मा नहीं दिखता। इसप्रकार बहिरात्मा को देह से पृथक् आत्मा का अस्तित्व ही नहीं दिखता, वह शरीर को ही आत्मा मानता है। अरे, कैसी भ्रमणा?—कि जिसमें आप अपना अस्तित्व ही भूल बैठा! और जड़ में ही अपना अस्तित्व मान लिया!—फिर उसे समाधि-शांति कहाँ से हो?

जीव के स्वरूप की पहिचान तो अतीन्द्रिय अंतर्मुख ज्ञान से ही होती है, बहिर्मुख इंद्रियज्ञान से नहीं होती। अज्ञानी अपने ज्ञानस्वभाव को नहीं जानता, परंतु इंद्रियों को ही ज्ञान का साधन मानता है, इसलिये इंद्रियों के द्वारा दिखनेवाले देहादिक को ही अपना स्वरूप मानता है। देहादिक तो जड़ है, वे आत्मा नहीं है, आत्मा से अत्यंत भिन्न है; परंतु अज्ञानी को इंद्रियज्ञान के द्वारा देह से भिन्न आत्मा नहीं दिखता, वह देहादि बाह्य पदार्थों को ही आत्मा मानता है। अतः बहिरात्मा है। यदि ज्ञान को अंतर्मुख करके देखे तो उसे अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा देहादि से भिन्न चिदानंदस्वरूप आत्मा का स्वसंवेदन होकर बहिरात्मभाव मिट जाये और अंतरात्मभाव प्रगट हो।

इंद्रियों से पार अतीन्द्रियस्वसन्मुखी ज्ञान से ही आत्मा स्वसंवेदन में आता है और वहाँ अतीन्द्रिय शांतिरूप समाधि प्राप्त होती है। अन्य किसीप्रकार से आत्मा को समाधि या शांति नहीं आती।

चाहे अपढ़ हो-लिखना-पढ़ना भी न आता हो, परंतु ज्ञान को अंतर्मुख करके चैतन्य-

विषय को जो जानता है, उसका ज्ञान सम्यक् है—मोक्ष का साधक है। जो ज्ञान मोक्ष का कारण हो, वही सच्ची विद्या है; इसके बिना लौकिक पढ़ाई चाहे जितनी पढ़े तो भी आत्मविद्या में तो वह नापास (अनुत्तीर्ण) ही है, उसकी पढ़ाई कुविद्या ही है। अरे! अपने चैतन्यतत्त्व को भूलकर देहादि में ही आत्मबुद्धि से वह अज्ञानी जीव क्षण-प्रतिक्षण भयंकर भावमरण से मर रहा है; उससे छूटने की तथा आत्मा का आनंद पाने की पिपास जिसे लगी हो, उसके लिये देहादि से विविक्त आत्मा का स्वरूप दिखाकर संतों कहते हैं कि—

अपूर्व शांति पाने के लिये आत्मा को पहचानो।

''मैं आत्मधर्म का दो साल से ग्राहक हूँ। यह पत्र वर्तमान में वस्तुतत्त्व को प्रकाशन करने में अति ही उपयोगी हो रहा है। परम पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन का पहला मौका मुझे फतेपुर (गुजरात) में मिला, उस समय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में गया था। गुरुदेवश्री की भव्य वाणी इस अंक में वीरमार्ग के अनुसार प्रसरित होती है। अत: यह पत्रिका सर्वज्ञमार्ग की प्रवर्तक भी है। इसमें आपने जो यह 'पढ़िये और खोजिये' नामक प्रकरण निकाला है, वह अति ही सुंदर है क्योंकि इसके खोजने में पत्रिका को अति निकट से पढ़ने का मौका मिलता है।''

—विमलकुमार जैन, दमोह

वीर निर्वाण महोत्सव में वीर बालकों का उत्साह

'अहो, हमारे भगवान का ढाई हजार वर्षीय निर्वाण महोत्सव मनाने का यह महान सुअवसर हमें मिला है'—ऐसे उल्लासभाव के साथ जैनसमाज का बच्चा-बच्चा निर्वाण महोत्सव में जो सुंदर सहयोग दे रहे हैं, उसे देखकर हमें हर्ष होता है। उत्सव के निमित्त अनेक बालकों ने ढाई हजार पैसे (२५,००) आत्मधर्म-बालविभाग की योजना में भेजे हैं, उनके नाम यहाँ दिये जाते हैं। अब भी रकम आना चालू है।

[४०६ से ४०९ नंबर नहीं है]

४१० रायचंद खेमराज जैन, सोलापुर
४११ भरतकुमार हिम्मतलाल जैन, सोनगढ़
४१२ नमीताबेन भरतकुमार जैन, सोनगढ़
४१३ साधनाबेन अनिलकुमार जैन, बम्बई
४१४ प्रज्ञाबेन रजनीकांत जैन, बम्बई
४१५ अतुल मुकुन्दराय खारा, बम्बई
४१६ प्रदीप मुकुन्दराय खारा, बम्बई
४१७ निरुपम मुकुन्दराय खारा, बम्बई
४१८ पंकज मुकुन्दराय खारा, बम्बई
४१९ चंद्रकलाबेन जैन, भिलाई
४२० भारतीबेन भोगीलाल दोशी, घाटकोपर
४२१ चंद्रिकाबेन भोगीलाल दोशी, घाटकोपर
४२२ चंद्रप्रभाबेन जैन, इंदौर
४२३ चैतन्यकुमार जैन, ईडर
४२४ कांतिलाल हरिलाल शाह, बम्बई
४२५ अश्विनकुमार मनहरलाल जैन, —
४२६ रमेशचंद्र गुलाबचंद जैन, शिवपुर
४२७ किरीटकुमार जमनादास संघवी, राजकोट
४२८ ध्रुवकुमार जमनादास जैन, घाटकोपर
४२९ भावनाबेन जमनादास जैन, घाटकोपर
४३० मीतेशकुमार जमनादास जैन, घाटकोपर
४३१ प्रणवभाई जमनादास जैन, घाटकोपर
४३२ अनिलकुमार अशोककुमार जैन, ''
४३३ कोकिलाबेन पंकजकुमार जैन, ''
४३४ अनीशभाई तथा अनिलभाई जैन, ''
४३५ प्रेमचंद (खेमराज दुलीचंद) जैन, खैरागढ़
४३६ जाज्ञा रमेशचंद्र गांधी, बम्बई
४३७ वनिताबेन गुलाबचंद जैन, जामनगर
४३८ विजयाबेन हरगोविंददास मोदी, सोनगढ़
४३९ अशोककुमार बावीशी, कल्याण
४४० रतनबाई जैन, वाराणसी
४४१ सुपार्श्वदास जैन, वाराणसी
४४२ ऋषभदास जैन की धर्मपत्नी, वाराणसी
४४३ विजयकृष्ण जैन की मातुश्री, वाराणसी
४४४ महिला-समाज पंचायती जैन मंदिरजी, वाराणसी

४४५ झवेरचंद पूनमचंद शाह, नैरोबी
४४६ लक्ष्मीबेन झवेरचंद शाह, नैरोबी
४४७ कमलबेन झवेरचंद शाह, नैरोबी
४४८ निर्मल जवेरचंद शाह, नैरोबी
४४९ विद्युत जवेरचंद शाह, नैरोबी
४५० बालचंद कस्तूरचंद जैन, बम्बई
४५१ शांताबेन बालचंद जैन, बम्बई
४५२ प्रकाशचंद बालचंद जैन, बम्बई
४५३ चीनुभाई बालचंद जैन, बम्बई
४५४ किशोरभाई बालचंद जैन, बम्बई
४५५ प्रफुलभाई बालचंद जैन, बम्बई
४५६ राजेश बालचंद शाह, बम्बई
४५७ प्रतिभाबेन प्रकाशचंद शाह, बम्बई
४५८ सरोजबेन चुनीभाई शाह, बम्बई
४५९ ज्योतिबेन किशोरचंद्र शाह, बम्बई
४६० जीतेश प्रकाशचंद्र शाह, बम्बई
४६१ मनीश प्रकाशचंद्र शाह, बम्बई
४६२ डिम्पल प्रकाशचंद्र शाह, बम्बई
४६३ राजीव चुनीलाल शाह, बम्बई
४६४ पारस चुनीलाल जैन, बम्बई
४६५ महेशकुमार प्रभुदास जैन, बम्बई
४६६ उषाबेन महेशकुमार जैन, बम्बई
४६७ कविता महेशकुमार जैन, बम्बई
४६८ मरधाबेन वृजलाल वोरा, बम्बई
४६९ चेतना बी. कामठ, बम्बई
४७० अशोककुमार जयंतिलाल कामदार, बम्बई
४७१ कुमारी नीरंजना जैन, जबेरा
४७२ प्राणकुंवरबेन हेमाणी, कलकत्ता
४७३ राजेश रमणीकलाल मोटाणी, कलकत्ता
४७४ राजेन रमणीकलाल मोटाणी, कलकत्ता
४७५ वेणीलाल शिवलाल जैन, सांगली
४७६ चंदुलाल मगनलाल जैन, कांदीवली
४७७ नितिन चिमनलाल शाह, अहमदाबाद
४७८ दाताराम जैन, —
४७९ ब्र. उषाबेन मयाचंद शाह, सोनगढ़
४८० भारतीबेन सी. देसाई, कलकत्ता
४८१ श्रीनिवास जैन, मेरठ
४८२ विनोदकुमार प्रदीपकुमार जैन, जबेरा
४८३ अभयकुमार संतोषकुमार जैन, जबेरा
४८४ किरणकुमार चंदुलाल संघवी, अहमदाबाद
४८५ ज्योतिबेन चंदुलाल संघवी, अहमदाबाद
४८६ मुकेशकुमार मनसुखलाल, सोनगढ़
४८७ चिमनलाल छोटालाल जोबालिया,सोनगढ़
४८८ क्षमादेवी जैन, दिल्ली
४८९ जानकीबाई धर्मपत्नी नेमीचंदजी, शिवपुरी
४९० मनोजकुमार पुत्रश्री नेमीचंदजी, शिवपुरी
४९१ रेखाबेन अनोपकुमार, अमेरिका
४९२ दिलीपकुमार बृजलाल जैन, वांकानेर
४९३ सतीशकुमार बृजलाल जैन, वांकानेर
४९४ शैलाबेन चंद्रकांत, चेम्बुर, बम्बई
४९५ नैशद हीरालाल चिमनलाल, अहमदाबाद
४९६ बसंतबेन छबीलदास डगली, मलाड, बम्बई

४९७ हीरामणीबेन रत्नबहादुर जैन, —
४९८ स्वाधीनबेन प्रकाशचंद्र जैन, खंडवा
४९९ श्रीमती विमलाबेन जैन, खंडवा
५०० विजयकुमार पन्नालाल जैन, करेली
५०१ महेशकुमार तथा मुकेशकुमार, अहमदाबाद
५०२ रतनलाल जैन, रतलाम
५०३ हरकुंवर जयंतिलाल, घाटकोपर, बम्बई
५०४ जिनेशकुमार जैन, बम्बई
५०५ बाबूलाल ज्ञानचंद जैन, बम्बई
५०६ हरिचरणदास जैन, बांसगढ़
५०७ मणीबेन सोमचंद डगली, वींछिया
५०८ भारतीबेन जैन, घाटकोपर, बम्बई
५०९ मंजुलाबेन रसीकलाल, घाटकोपर, ''
५१० ललिताबेन बाबूलाल गांधी, घाटकोपर, ''
५११ अतुलकुमार जगजीवनदास कामदार, गढडा
५१२ दिगंबर जैन महिला आश्रम, दिल्ली
५१३ जयेश मनहरलाल जैन, वडीया
५१४ विपुल मोहनलाल जैन, वडीया
५१५ मनोज प्रमोदराय जैन, वडीया
५१६ हेमेन्द्र प्रमोदराय जैन, वडीया
५१७ दक्षाबेन तथा दीपक वछराज, अमेरिका
५१८ रेखाबेन दोशी, नागपुर
५१९ कमल वछराज पारेख, राजकोट
५२० रूपाबेन वछराज पारेख, राजकोट

(ता. ८-२-७५ तक)

बड़ा उत्साह

गतांक में निर्वाण महोत्सव संबंधी तथा धर्मचक्र संबंधी समाचार छपे हैं, तदुपरांत अनेक जगह से और भी समाचार प्राप्त हुए हैं; सभी जगह इतना भारी उत्साह है कि जिसका पूरा वर्णन आत्मधर्म में नहीं समा सकता। भारत भर में इतना बड़ा प्रभावशाली निर्वाण महोत्सव के द्वारा महावीर शासन की महिमा देखकर हम सबको बहुत प्रसन्नता हो रही है। अभी पूरे वर्ष तक हमें अपना उत्साह बढ़ाते ही रहना है।

छोटी सूचना

पत्र लेखकों से सूचना : बंधुओं, आप जो लेख-समाचारादि भेजें वह स्पष्ट-सुवाच्य सुंदर अक्षरों में ही भेजने की कृपा करें; क्योंकि आपके संपादक की मातृभाषा हिन्दी न होने से अस्पष्ट लेख पढ़ने में तकलीफ होती है। एवं टाइप की गई प्रतिलिपि की तीसरी-चौथी प्रति न भेजकर प्रथम की स्पष्ट प्रति ही भेजें। समाचार आदि जहाँ तक हो अति संक्षेप में भेजें।

सर्व उद्यम से सम्यग्ज्ञान प्रगट करो

वीतराग-विज्ञान करना, यही वीर का निर्वाणोत्सव है

[छहढाला-प्रवचन से : आत्मधर्म, अंक ३५६ से आगे]

मुमुक्षु के लिये बारबार भेदज्ञान की प्रेरणा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि अहो, यह भेदज्ञान निरंतर भावना करने योग्य है, क्योंकि सिद्धि का कारण यह भेदज्ञान ही है। जो कोई जीव मोक्ष पाते हैं, वे भेदज्ञान से ही पाते हैं। मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ, ज्ञानस्वरूप से भिन्न जो कोई शुभाशुभराग या धन-कुटुंबादि संयोग हैं—वह मैं नहीं;—ऐसे भेदज्ञान के द्वारा आत्मा अनुभव करके ही जीव सिद्धि पाते हैं; और ऐसे भेदज्ञान के बिना कोई जीव सिद्धि नहीं पा सकता; इसप्रकार भेदज्ञान ही मुक्ति का उपाय है।

भेदज्ञान संवर जिन पायो ते चेतन शिवरूप ग्रहायो।
भेदज्ञान जिनके घट नांही ते जड़ जीव बंधे जगमांही॥

— ऐसा जो भेदज्ञान है, वह आत्मा से अभिन्न है और वह मोक्ष का कारण है, अतः भेदज्ञान की भावना मुमुक्षु को निरंतर कर्तव्य है। आत्मज्ञान से रहित अकेली बाहरी जानकारी को कहीं भेदज्ञान नहीं कहते, वह तो अज्ञान है, कुज्ञान है, मिथ्याज्ञान है। अरे, जो अपने आत्मा को पर से भिन्न न जाने, उसे सत्य ज्ञान कौन कहे ? पर से भिन्न अपने आत्मा का ज्ञान-अनुभव ही सत्य भेदज्ञान है। निजस्वरूप में एकता करके जो रागादि से भिन्न हुआ, वही सुज्ञान है। ऐसे भेदज्ञानवंत सुज्ञानी जीव वही मुक्ति का पथिक है। जिसको ऐसा भेदज्ञान नहीं है, और देह में तथा राग में एकताबुद्धि से जिसका ज्ञान अज्ञानरूप हो रहा है—ऐसा जीव शुभ-अशुभ कर्मों को बाँधकर संसार में ही रुलता है। अतः श्रीगुरु कहते हैं कि हे भाई! हे आत्महित के अभिलाषी! करोड़ों उपायों से भी तुम ऐसा भेदज्ञान करो... अपने हित का यह उत्तम कार्य सबसे प्रथम करो।

आत्मसम्मुख होकर जिसने पर से भेदज्ञान प्रगट किया, स्वानुभव से जिसने आत्मा का निश्चय किया, फिर संयोग पलटने पर भी उसका वह निश्चय चलित नहीं होगा। सच्चा निर्णय

ऐसा नहीं होता कि यहाँ (स्वाध्यायमंदिर में) बैठे हो, तब तक ही रहे और वहाँ से बाहर जाते ही छूट जावे! सच्चा तत्त्वनिर्णय तो जहाँ-कहीं भी आत्मा के साथ ही रहता है, कभी किसी संयोग में छूटे नहीं—क्योंकि वह निर्णय संयोग के आधार से नहीं हुआ है, परंतु आत्मा के स्वभाव के आधार से ही हुआ है। ज्ञानी को जो भेदज्ञान की अनुभूति हुई, वह सदैव सर्वप्रसंग में रहा करती है; उसने आत्मा को आत्मारूप जाना, वह कभी छूटता नहीं, तथा पर को पररूप जाना, उसमें कभी आत्मभाव नहीं होता।—

निजभाव को नहीं छोड़ता, परभाव को ग्रहता नहीं।
जो जानता सभी को वही मैं,—ज्ञानी का चिंतन यही॥

अहा, ऐसा जो भेदज्ञान हुआ, वह तो आत्मरूप हो गया, अब वह छूटेगा नहीं, वह तो आत्मा का निजरूप है। हे भाई! पुण्य-पाप से रहित अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा को तुम देखो तो सही! तुमको अपना आत्मस्वरूप कोई परम अद्भुत दिखेगा, अपने आत्मा में से ही तुम्हें मुक्तिसुख का स्वाद आयेगा। वाह! ऐसे भेदज्ञानवाला जीव प्रशंसनीय है। धन के ढेर हो या बहुत शास्त्र का पठन हो—इससे कहीं जीव प्रशंसनीय नहीं होता; किंतु अंतर में अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा जिसने चैतन्यतत्त्व की अनुभूति की है, वह जीव तीनलोक में प्रशंसनीय है (-चाहे वह पशु शरीर में हो या दरिद्र भी हो।) श्री कुन्दकुन्दस्वामी भी ऐसे धर्मी जीव की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि—

वह धन्य है कृतकृत्य है शूर-वीर है पण्डित है।
सम्यक्त्व-सिद्धिकर जिन्हें, नहीं स्वप्न में दूषित है॥

आत्मा के अनुभवरूप जो भेदज्ञान है, उसका साधन भी आत्मा से अभिन्न ऐसा ज्ञान ही है; वह चैतन्यस्वभाव में घूसकर आत्मा को परभाव से पृथक् ग्रहण कर लेता है और परमसुख का अनुभव करता है। आत्मा चैतन्यवस्तु है, असंख्य प्रदेश का पिण्ड है, ज्ञान-सुखादि अनंत स्वभाव उसमें भरा है; जैसे चंदन में सर्वत्र सुगंध है, वैसे चैतन्य में सर्वत्र ज्ञान-आनंद है; उसमें देह नहीं, राग नहीं। अनंत भावों से भरपूर एक चैतन्यवस्तु मैं हूँ—ऐसे स्वसन्मुख होकर जो सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, वह अंतर के चैतन्यसमुद्र का तरंग है, चैतन्य के अनंत गुणों का रस उसमें भरा है; जो भेदज्ञान होता है, वह आनंदसहित होता है। जैसे शक्कर की मिठास ख्याल में

आती है, वैसे चैतन्य के आनंद में जो अतीन्द्रिय मिठास है, उसका स्वाद भेदज्ञानी को आता है। शुभविकल्प में आकुलता है, उसके स्वाद से जुदा परम निराकुल शांतरस आत्मा में है; उसका अनुभव करने के लिये, समस्त संसार के बाह्य भावों का रस छूटकर अंतर में आत्मा का रस आना चाहिये; अत्यंत प्रेम से उसमें परिणाम लगाना चाहिये। आत्मा रूप से रहित होने पर भी सत् वस्तु है, उसका साक्षात् स्वाद धर्मी के अनुभव में आता है। अरूपी होने से वह अनुभव में भी न आ सके—ऐसा नहीं है, ज्ञान के द्वारा वह अनुभव में आता है; परंतु इसके लिये अंतर में उसका बहुत अभ्यास करना चाहिये।

'कोटि उपाय बनाय भव्य! ताको उर आनो।'

देखो, कोटि उपाय से सम्यग्ज्ञान करने का कहा, परंतु 'कोटि उपाय से तू शुभराग कर' ऐसा न कहा; क्योंकि राग सुख का कारण नहीं है, सम्यग्ज्ञान ही सुख का कारण है; अतः विकल्प से भिन्न होकर आत्मा का अभ्यास करना। सम्यग्दर्शन के बाद भी जो विकल्प आवे, उससे भिन्न ज्ञान का अभ्यास करना। हे भाई! तेरे हित के लिये तू दुनिया की परवाह छोड़कर सर्व उपाय से आत्मा का ज्ञान कर। बाहर में चाहे करोड़ों मुश्किलीयाँ हों, निन्दा हो, रोग हो, निर्धनता हो, फिर भी तू अंतर में आत्मा के अनुभव का उद्यम कर। 'मृत्वा अपि' अर्थात् मरण के समान प्रतिकूलता आ जाये तो भी तू अपने भीतर में आत्मा को देख! यही अंतर की अपूर्व वीतरागी क्रिया है। धर्म में यही मूल चीज़ है, इसके बिना शुभ की कोई गिनती नहीं है। संसार के जीवों को शरीर की तथा राग की क्रिया दिखती है परंतु धर्मी के अंतर में श्रद्धा-ज्ञान की जो वीतरागी क्रिया है, वह उन्हें नहीं दिखती; यदि उसे पहचाने, तब तो भेदज्ञान का महान लाभ हो जाये। यहाँ करोड़ों उपायों से ज्ञान करने का कहा, तो क्या भिन्न-भिन्न करोड़ों उपाय हैं?—नहीं; उपाय तो एक ही है, परंतु करोड़ों प्रकार की प्रतिकूलताओं के बीच में भी, आत्मा को पहचानकर अनुभव करना, भेदज्ञान करना—यही कर्तव्य है।

जिसके अंतर में सम्यग्ज्ञान-कला जागी, उस जीव को संसार के प्रति सहज वैराग्य हो जाता है; विषय-कषायों में कहीं अंशमात्र सुख उसे नहीं दिखता। भले ही वह गृहस्थाश्र में रहा हो, पुण्य-पाप के भाव होते हों, किंतु ज्ञान के प्रताप से वह अपने आत्मा को पुण्य-पाप से भिन्न ज्ञानस्वादरूप अनुभव में लेता है। पर के साथ मेरा कोई संबंध नहीं—इसप्रकार की उसकी

ज्ञानपरिणति पर से तथा राग से अत्यंत निर्लेप रहती है। भगवान आत्मा के आनंदअमृत के पास विषय-कषाय विषतुल्य दिखता है। भरतीचक्रवर्ती, राजा राम, विद्याधर हनुमान वगैरह सम्यग्दृष्टि थे, उनके अंतर में ऐसी ज्ञानचेतना थी। इंद्र जिसका मित्र था ९६००० जिसके रानियाँ थीं, छह खंड का जिसे राज्य था, तीर्थंकर जिसका पिता था, बाहुबली जैसा जिसका भाई था, और नवनिधान जिसके आंगन में था, इतने पर भी वह भरतचक्रवर्ती जानता था कि इनमें से कोई भी मेरा नहीं है, वे सब मेरे से बाह्य हैं, इनमें कहीं मैं नहीं हूँ;—ऐसी भेदज्ञान की कला के द्वारा अपने अंतर में चैतन्य के आनंद का स्वाद लेता था। ऐसा ज्ञान है, वह आत्मा का निजस्वरूप है, एकबार प्रगट होने के बाद भेदज्ञान की वह धारा आगे बढ़ती हुई अक्षय केवलज्ञान को साधती है और पूर्ण आनंद को प्राप्त कर लेती है। अत: कहते हैं कि—जगत में जिस किसी भी जीव को आत्मा के सुख की चाहना हो वे अपने अंतर में कोटि उपायों से—अर्थात् अंतर में महान अपूर्व उद्यम से परिणाम को आत्मा में लगाकर सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान प्रगट करो। तीनों काल यही मोक्ष का उपाय है, इसी से विषयों की वांछारूप भयंकर दावानल बुझता है और परम आत्मशांति मिलती है। ●●

❀ सुलझा दो... हमारी दो पहेलियाँ ❀

(१) शोधो-एक सुंदर काम [जो आप अभी कर ही रहे हो]

एक कार्य बहुत सुंदर एवं हितकर है-जो आप अकेले भी कर सकते हो; वह काम करते समय ऐसी शांति लगती है—मानों हम अपनी प्यारी माँ की गोद में ही बैठे हों; यह काम ऐसा अच्छा है कि जो करने से हमारा थाक दूर हो जाता है; मुमुक्षु जब अकेला हो, तब यह कार्य उसका खास साथी बन जाता है और उसे आनंद देता है। यह कार्य सदा लाभकारी ही है, इसके करने से कभी नुकसान नहीं होता, सदा लाभ ही लाभ है; इस कार्य की सभी ने प्रशंसा की है, और प्राय: सभी मुमुक्षु यह अच्छा काम प्रतिदिन करते हैं। यह कार्य ऐसा निर्दोष है कि मुनि भी वह कार्य करते हैं; दिन को तथा रात्रि को भी वह किया जा सकता है। उसका अंतिम अक्षर '....य' है। अभी इस समय आप भी वह काम कर ही रहे हो। कहो—कौन सा है वह काम ?

(२) 'एक सुंदर वस्तु'

❀ वह हमें बहुत प्रिय है, कैसी प्रिय ? कि माता जैसी प्रिय।

❀ उसका स्वाद अमृत से भी अधिक मीठा है; उसका नाम चार अक्षर का है।

❀ उसके पहले दो अक्षरों में जिनभगवान का वास है;

❀ उसके अंतिम दो अक्षर प्रभु के मुख से निकले हैं; हमारे मुँह में भी वह है;

❀ अभी आपके हाथ में भी वह चीज़ है।

❀ यह वस्तु स्वयं अजीव होती हुई जिनधर्म का प्राण उसमें भरा है।

— बस, अब आप ही खोजिये उस वस्तु को! (ध्यान रहे कि उसके नाम के चार अक्षरों में कोई संयुक्त अक्षर नहीं है।)

हमारी प्रिय आत्मधर्म पुस्तिका को बारबार पढ़ने में भी मन नहीं ऊबता, उसे बार-बार पढ़ने में शांति मिलती है। आत्मा के मीठे स्वाद का अलौकिक आनंद आता है। यदि इसका अनुभव हो तो उस अपूर्व आनंद का क्या कहा जाये? पहला अंक पूर्ण नहीं हो पाता कि दूसरा अंक का दर्शन हो जाता है। यह मीठा मंगल प्रसाद है जो हमारी पूज्य गुरुदेव की दी हुई मंगल भेंट है। लौकिक सर्ववस्तु का मूल्य चुका सकते हैं, पर इस भेंट का मूल्य चुकाना असंभव ही है।

(मेरी अंतर भावना) —मैनादेवी चौधरी, देवास

ગુજરાતી વાંચતાં શીખો

(૧) મહાવીર ભગવાનનો નિર્વાણ-મહોત્સવ આપણે ઊજવી રહ્યા છીએ.
(૨) મુમુક્ષુજીવે જીવનમાં આત્મઅનુભૂતિ વડે સમ્યગ્દર્શન કરવું તે કર્તવ્ય છે.
(૩) જ્ઞાન અને રાગ બંને એકબીજાથી અત્યંત ભિન્ન છે, જુદા છે.
(૪) શ્રી અરિહંતદેવને નમસ્કાર હો; શ્રી સિદ્ધભગવાનને નમસ્કાર હો.
(૫) આપણે હિન્દી હોઈએ કે ગુજરાતી પણ એકબીજાના સાધર્મી છીએ.
આપણી ભાષા ભલે જુદી હોય પણ આપણો ધર્મ એક જ છે, જુદો નથી.

[ગુજરાતી વાંચવાનો પ્રયત્ન કરશો તો આપને જરૂર સમજાશે, ને આનંદ થશે.]

गिरनार-सिद्धक्षेत्र में मंगल-प्रतिष्ठा महोत्सव

[तीर्थराज की उल्लासपूर्ण यात्रा; महावीर-धर्मचक्र का आगमन]

वीर सं. २५०१ माघ शुक्ल दोज से पंचमी तक गिरनार सिद्धक्षेत्र की तलहटी में पूज्य श्री कहानगुरु की मंगल छाया में अनेक उत्सव उमंग भरे वातावरण में संपन्न हुए।—नेमप्रभु की प्रतिष्ठा हुई—नूतन मानस्तंभ में जिनबिम्ब स्थापन हुआ; सहस्त्रआम्रवन तथा पाँचवीं टोंक की तीर्थयात्रा हुई; महावीर-धर्मचक्र का सात सौ यात्रिकों के संघसहित आगमन हुआ, जैनशासन के सारभूत 'ज्ञायकभाव' की झँकार से गिरनार पर्वत गूँज उठा। चारों ओर ऐसा धार्मिक वातावरण देखकर ऐसी ऊर्मियाँ जागृत होती थीं कि वाह रे वाह! संतों की साधनाभूमि! तेरे को धन्य है।

'वाह गिरनार वाह! [ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

माघ शुक्ल दोज के प्रातःकाल पूज्य गुरुदेव के साथ भावभीने चित्त से नेमिनाथ भगवान का स्मरण करते-करते कल्याणकधाम गिरनार में आ पहुँचे... नेमप्रभु की वेदी प्रतिष्ठा का मंगल उत्सव चल रहा था। मंगल स्वागत विधि के बाद नेमप्रभु के भावपूर्ण दर्शन किये। फिर श्रीमंडप में मंगल सुनाते हुए गुरुदेव ने कहा कि आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, वह सर्वज्ञस्वभाव नेमिनाथ भगवान ने इस गिरनार भूमि में प्रगट किया है, और यहीं से दिव्यध्वनि के द्वारा जगत को वह बतलाया है। ऐसे स्वभाव की श्रद्धा करने पर आत्मा में जो सम्यग्दर्शन और आनंदरूप साधकदशा प्रगट हुई, वह अपूर्व मंगल है। सम्यग्दर्शन वह सिद्धपद की तलहटी है, और वही सिद्धक्षेत्र की यात्रा का सच्चा प्रारंभ है। भगवान नेमिनाथ और ७२,०००,७०० (बहत्तर करोड़-सात सौ) मुनि यहाँ से सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, उनके स्मरणरूप यह यात्रा है।

शुभ-अशुभ कषायभाव दुःखरूप हैं; उनसे पार शांतस्वरूप चेतना है; अहा, ऐसे स्वभाव की ज्ञानकला प्रगट हुई, वहाँ मोक्ष का उत्सव प्रारंभ हो गया। जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, वह जीव मोक्ष की तलहटी में आ गया; सम्यग्दर्शन प्रगट करके जो मोक्ष की तलहटी में आया, उसे अब मोक्षधाम में पहुँचने के लिये अधिक समय नहीं लगता। अहा, जिनकी

तलहटी में आने पर भी अपूर्व आनंद का अंश प्रगट होता है, उस मोक्ष-सुख की क्या बात! अज्ञान-दु:ख का नाश करके ऐसा अपूर्व सुख प्रगट हो, वह मंगल है।

मंगलाचरण के बाद नेमप्रभु के प्रतिष्ठा महोत्सव के मंगल प्रारंभ में धर्मध्वज-आरोहण-विधि पूज्य गुरुदेव के मंगल सुहस्त से (ब्रह्मचारी हरिभाई जैन की ओर से) हुई थी। गिरनार तीर्थधाम में पूज्य गुरुदेव के सुहस्त से धर्मध्वज को लहराता हुआ देखकर सबको प्रसन्नता होती थी। इसके बाद भगवंत पंच परमेष्ठी का पूजन हुआ था। दोपहर के प्रवचन में समयसार की छठवीं गाथा में 'ज्ञायकभाव' दर्शाते हुए स्वामीजी ने कहा कि—यह तो नेमिनाथ प्रभु का मोक्षधाम है, मोक्षधाम की तलहटी में समयसार की इस छठवीं गाथा पर प्रवचन होते हैं। कैसे आत्मा को जानने से मोक्ष होता है? वह बात कुन्दकुन्दस्वामी ने बतलायी है। विदेहक्षेत्र में विराजमान सीमंधरस्वामी के दिव्यध्वनि का साक्षात् श्रवण करके आचार्यदेव ने इन शास्त्रों की रचना की है, इनमें आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदन सहित आत्म-वैभव से एकत्व-विभक्त ज्ञायकभाव बतलाया है।

अहा, ज्ञायकभाव!—जो शुभाशुभ से पार है, जिसमें सुंदर आनंद विद्यमान है, उसके अनुभव करने का यह अवसर है। भाई! तूने चारों गति में अनंतबार परिभ्रमण किया है, परंतु चैतन्य की शांति उससे पार कोई अलौकिक वस्तु है। चैतन्यभावरूप आत्मा का स्वसंवेदन होने पर सम्यग्दर्शन में भी आनंद का कोई अपूर्व स्त्रोत प्रवाहित होता है। फिर मुनिदशा के महान आनंद की तो क्या बात? ऐसी आनंद दशावाले भगवान नेमनाथ इस गिरनार में विराजमान थे। जिसकी यह चौथी बार यात्रा करने आये हैं। प्रथम सं. १९९६ में, दूसरी २०१० में, तीसरी २०१७ में और यह चौथी यात्रा इस २०३१ में हो रही है। महावीर भगवान के २५०० वर्षीय निर्वाण महोत्सव के वर्ष में नेमप्रभु के निर्वाणधाम की यात्रा हो रही है तथा मानस्तंभ में नेमप्रभु की मंगल प्रतिष्ठा भी हो रही है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने भी इस गिरनार तीर्थ की यात्रा की थी। उनके द्वारा बतलाये हुए 'ज्ञायकभाव' का यह मंत्र मिथ्यात्व का विष नष्ट कर देता है। भाई! तू एकबार इस मंत्र का श्रवण कर! तेरा भवचक्र बन्द हो जायेगा, और तेरे में धर्मचक्र का अपूर्व प्रारंभ होगा।

संसार-भ्रमण का कारण कषायचक्र है, शुभ और अशुभ ये दोनों भाव कषायचक्र से

होनेवाले हैं, ज्ञायकभावरूप शुद्ध आत्मा को देखो तो वह शुभाशुभरूप नहीं हुआ, उसकी उपासना करने से वह सम्यक्त्वादि शुद्धभावरूप ही अनुभव में आता है, और ऐसी अनुभूति, यही भगवान का धर्मचक्र है। यह धर्मचक्र कषायचक्र का नाश करनेवाला है, यह धर्मचक्र 'ज्ञायकभाव' की उपासना से अर्थात् शुद्धात्म-अनुभूति से चलता है।

माघ शुक्ल तीज के प्रातःकाल गुजरात प्रांत के 'महावीर धर्मचक्र' का ७०० यात्रिकों के संघ सहित गिरनारधाम में आगमन हुआ। जैनधर्म प्रभावक धर्मचक्र को देखकर सभी को आनंद हुआ... गुरुदेव धर्मचक्र के रथ में कुछ समय बैठे... अहा, वीरनाथ भगवान! आपको धर्मचक्र आज भी चल रहा है और इस धर्मरथ में बैठकर मुमुक्षु जीव आपके मोक्षमार्ग में चल रहे हैं। गुजरात कर यह धर्मचक्र सात सौ जितने साधर्मी यात्रियों के साथ भारत के कई प्रांतों में घूमेगा और स्थान-स्थान पर भगवान महावीर का संदेश सुनायेगा। तलोद में इस धर्मचक्र का उद्घाटन श्री प्रकाशचंद्रजी जैन सेठी (मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्रीजी) द्वारा हुआ था। इस प्रसंग पर मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्रीजी ने मध्यप्रदेश सरकार की ओर से गुजरात को पचास हजार रुपये दुष्काल राहत फंड में देने की घोषणा की थी। भारत में आजकल मुख्य पाँच महावीर-धर्मचक्र चल रहे हैं:- प्रथम धर्मचक्र दिल्ली-राजधानी से चला था-जिसका उद्घाटन भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिराबहिन गाँधी ने किया था, दूसरा इंदौर से प्रारंभ हुआ है; तीसरा श्रवणबेलगोला से चला है, चौथा धर्मचक्र राजगृही तीर्थधाम से चला है और पाँचवाँ गुजरात प्रदेश का धर्मचक्र फतेपुर से चला है। स्थान-स्थान पर अभूतपूर्व जागृति आ रही है, और धर्मचक्र का धामधूमपूर्वक सम्मान हो रहा है। हम सब भी महावीर भगवान के जयकार सहित धर्मचक्र का आनंद से स्वागत करते हैं और भावना भाते हैं कि जिनेन्द्र भगवान का धर्मचक्र संपूर्ण देश में प्रवर्ते और जगत के जीवों का कल्याण करे।

श्री गिरनारधाम में एकसाथ तीन भव्य कार्यक्रम चल रहे हैं—एक तो नेमिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा का महोत्सव (यह जिनबिम्ब-प्रतिष्ठा महोत्सव भोपाल के सेठ श्री बिहारीलालजी जैन की ओर से हुआ था।) दूसरा-गुरुदेव के साथ गिरनारतीर्थ की भावभीनी यात्रा; तीसरा-ढाई हजार वर्षीय निर्वाणमहोत्सव-अंतर्गत 'महावीर-धर्मचक्र' का संघसहित आगमन।

माघ शुक्ल तीज के दोपहर में १२ बजे गुरुदेव ने यात्रिकों के साथ गिरनार पर चढ़ना

प्रारंभ किया... गुरुदेव को तथा साथ में भक्तों को भी तीर्थयात्रा का बहुत उल्लास था। दो बजे प्रथम टोंक पर पहुँचे; फिर वहाँ से सहस्त्रआम्रवन की ओर प्रस्थान किया। आह, नेमिनाथ भगवान जहाँ दीक्षा लेकर मुनि हुए, जहाँ क्षपकश्रेणी चढ़कर केवलज्ञानी-सर्वज्ञ हुए और जहाँ से दिव्यध्वनि द्वारा जगत को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का उपदेश दिया—उस पवित्रधाम में हम जा रहे हैं-तब हमारे भाव भी वैसे ही पवित्र हो रहे हैं... और भाव की पवित्रता ही उत्तम तीर्थयात्रा है।

अब, सहस्त्रआम्रवन में श्रीगुरु के साथ नेमप्रभु के चरणों के पास बैठे हैं... प्रभु के वैराग्यधाम में और केवलज्ञान के धाम में गुरुदेव के साथ अद्भुत ज्ञान-वैराग्य के भाव जागृत होते हैं; स्वामीजी बार-बार नेमप्रभु का स्मरण करके कहते हैं कि यहीं पर भगवान का समवसरण था। 'बाल ब्रह्मचारी जिणंदपदधारी...' इस भजन के द्वारा गुरुदेव ने भक्ति की थी; पश्चात् पूज्य बेनश्री व पूज्य बेनजी ने भी उल्लासपूर्ण वैराग्यमय भक्ति करायी थी... सहस्त्रआम्रवन का शांत वातावरण कोई अद्भुत है। वहाँ की यात्रा करके जिनमंदिर में (प्रथम टोंक पर) नेमप्रभु की भावभीनी भक्ति की। बहुत से यात्रियों ने रात्रि को प्रथम टोंक पर ही विश्राम किया; गिरनार के ऊपर तीव्र शीत के मध्य भी नेमप्रभु के गुण-स्मरण द्वारा रात्रि बीत चली; कब प्रातःकाल हो और कब पाँचवीं टोंक पर जाकर सिद्धक्षेत्र की यात्रा करे-ऐसी उत्सुकता से यात्री लोग सोये ही नहीं। प्रातःकाल होते ही पाँचवीं टोंक पर पहुँच गये... यहाँ नेमप्रभु की मूर्ति पहाड़ में ही उत्कीर्ण है; उसके सन्मुख भक्तिभाव से अर्घ चढ़ाया। इस टोंक पर नेमिप्रभु के चरणचिह्न विराजमान हैं परंतु देशकाल-अनुसार आज उसकी व्यवस्था अपने हाथ में नहीं रही। फिर भी वह हमें अपने नेमनाथ प्रभु के मोक्ष का स्मरण तो अवश्य कराते ही हैं।—प्रभु को हमारे हृदय में से कोई दूर नहीं कर सकता। पाँचवीं टोंक की यात्रा के बाद प्रथम टोंक के जिनमंदिर में अभिषेक हुआ। प्रथम अभिषेक की बोली सोनगढ़ की ब्रह्मचारी कंचनबहन वगैरह ने ली थी; और पूज्य स्वामीजी के मंगल हस्त से जिनेन्द्र अभिषेक हुआ था। गिरनार पर ऐसा अभिषेक देखकर सबको आनंद हुआ। बहुत से यात्री चौथी टोंक (प्रद्युम्नसिद्धिधाम) की यात्रा को भी गये थे। यहाँ पर भी पर्वत में एक जिनमूर्ति उत्कीण है-जो कि पाँचवीं टोंक की मूर्ति के सदृश ही है। तथा चरणपादुका भी पर्वत में ही उत्कीर्ण है। चौथी और पाँचवीं टोंक की बिल्कुल सदृश रचना को देखकर ऐसा ख्याल आता है कि यह

दोनों रचनायें एक ही समय में हुई हैं। ऐसी दूसरी दो जिनमूर्तियाँ पर्वत के के भिन्न-भिन्न स्थान में हैं (एक तीसरी टोंक के बाद पाँचवीं टोंक की ओर जाते हुए मार्ग में दायीं ओर है और दूसरी नीचे से प्रथम टोंक की ओर आते समय आधे से अधिक भाग निकल जाने पर बायीं ओर है, इससे ऊपर 'सं. १४' ऐसा उत्कीर्ण है।)

आनंदपूर्वक महान तीर्थ की यात्रा करके, गुरुदेव के साथ पूज्य बहिनश्री-बहिन की विध-विध भक्ति झेलते-झेलते और प्रभु जैसे जीवन की उत्तम भावना भाते-भाते नीचे आये, और नेमप्रभु के जय-जयकारपूर्वक यात्रा पूर्ण हुई।

ध्रुव अचल अरु अनुपम गति को प्राप्त नेमिनाथ को
कर नमन, मैं की सिद्धियात्रा शुद्ध-सम्यक् भाव से॥
जहाँ नेमिनाथ मुनि हुए अरिहंत एवं सिद्ध बने;
कर नमन, कीनी तीर्थयात्रा, कहानगुरु साथ में॥

तीथयात्रा, प्रतिष्ठामहोत्सव और महावीर धर्मचक्र—ऐसे तीनों मंगल प्रसंग में सम्मिलित होने के लिये आये हुए ढाई हजार जितने यात्रियों से तीर्थधाम का वातावरण बहुत प्रसन्नतापूर्ण था; और गुरुदेव भी प्रवचन में ज्ञायकभाव के साथ-साथ बार-बार प्रसन्नतापूर्वक नेमिनाथ भगवान का स्मरण करके गिरनार तीर्थ की महिमा प्रसिद्ध करते थे... जिसका श्रवण करने पर ऐसा लगता था कि वाह रे वाह तीर्थराज! तुम्हारी महिमा कौन न करे? बहत्तर करोड़ और सात सौ सर्वज्ञ भगवंतों के अतीन्द्रिय आनंद से स्पर्शित ऐसी इस तीर्थभूमि को वंदन कौन न करे? अहा, अभी ऐसे महान तीर्थ में ही गुरुदेव के साथ बैठे हैं, और आनंद से प्रभु के सिद्धिपंथ में यात्रा कर रहे हैं।

श्रमणो-जिनों-तीर्थंकरों आ रीते सेवी मार्गने,
सिद्धि वर्या, नमुं तेमने... निर्वाणना अे मार्गने।
—सिद्धि वर्या, नमुं तेमने, निर्वाणना आ धामने॥

(प्रवचनसार गाथा २०० गुजराती भाषा है)

माघ शुक्ल पंचमी के दिन प्रवचन के बाद नेमिनाथ भगवान के भव्य (सोनगढ़ के परमागममंदिर में विराजमान महावीर भगवान के सदृश विशाल भव्य) जिनबिम्ब का स्थापन

हुआ; मानस्तंभ में ऊपर-नीचे नेमिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा हुई; तथा गिरनार से मोक्षगामी शम्बुकुमार, अनिरुद्धकुमार और प्रद्युम्नकुमार की प्रतिमा का भी स्थापन हुआ। इसप्रकार आनंदपूर्वक प्रभु की प्रतिष्ठा का मंगल उत्सव पूर्ण हुआ। प्रतिष्ठा की खुशी में सायंकाल धर्मचक्रसहित जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा जूनागढ़ शहर में निकली; अद्भुत उल्लास पूर्ण महान रथयात्रा को देखकर सबको आनंद होता था। गिरनार का उत्सव पूर्ण करके स्वामीजी सोनगढ़ पधारे।

सोनगढ़ के बाद गुरुदेव भावनगर-सूरत-पालेज-बम्बई होकर भोपाल पधारे थे, वहाँ पीपलानी में जिनेन्द्र-पंचकल्याणक प्रतिष्ठा वगैरह का भव्य आयोजन हुआ; बड़ा भारी उत्सव आनंदपूर्वक पूर्ण हुआ; उसका समाचार प्राप्त होने पर अगले अंक में दिया जायेगा। इस वक्त मैं स्वयं प्रवास में पूज्य स्वामीजी के साथ में शामिल नहीं हुआ हूँ; इसलिये मैं स्वयं उत्सव का बयान नहीं दे सकता हूँ; हरेक जगह से मुझे जो समाचार एवं चित्र प्राप्त होगा, उसी के आधार पर समाचार दिया जावेगा। (सं.)

जिनेन्द्र भगवान का कल्याणक जगत का कल्याण करो।
सर्व जीव सुखकारी वीरनाथ का धर्मचक्र सदैव सर्वत्र प्रवर्तमान हो॥

—००—

क्षतियाँ दिखाकर सहयोग दीजिये

आपकी प्रिय इस पत्रिका का संपादक मैं गुजराती हूँ, मेरी मातृभाषा हिन्दी न होने से, साहित्यिक दृष्टि से लेखों की भाषा में क्षतियाँ रह जाना संभव है। सो आप ऐसी क्षतियों की सूचना लिखकर भेजिये—ताकि मैं आगे के लिये क्षतियाँ दूर करने का प्रयत्न करूँगा। और भी जो सूचनायें हो अवश्य लिखिये।

सब साधर्मी के वात्सल्यपूर्ण सहकार से ही 'आत्मधर्म' प्रति के पथ पर आगे कूच कर रहा है।

— धन्यवाद!

संपादक : आत्मधर्म, सोनगढ़-३६४२५०

'श्री मुनिराज के साथ में' (अथवा)
'आर्यिकामाताजी के साथ में'

श्री भगवान-महावीर के ढाई हजार वर्षीय निर्वाणमहोत्सव प्रसंग पर

आत्मधर्म-बालविभाग की ओर से सहर्ष रजु की जाती है—

*** भाई-बहनों के लिये सुंदर इनामी योजना ***

[आप उत्साह से भाग लीजिये... चैत्र सुद १३ तक लेख भेजिये।]

(१) धर्मवत्सल बंधुओं! मान लीजिये कि हमें महान भाग्य से कुन्दकुन्दस्वामी, धरसेनस्वामी या समंतभद्रस्वामी जैसे कोई महान मुनिराज का दर्शन प्राप्त हुआ। हम वैराग्यपूर्वक उनके साथ रहते हैं, भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करते हैं तथा उनके साथ आत्महित की अच्छी-अच्छी चर्चा करते हैं—ऐसे आनंद के प्रसंग का वर्णन आपको लिखने का है। मुनिराज के साथ में रहते हुए और उनका वीतरागी जीवन देखते हुए आपको कैसी कैसी भावनायें जगीं? आपने मुनिराज से क्या-क्या पूछा तथा मुनिराज ने आपको क्या-क्या कहा? यह आठ-दस पृष्ठ में आपको लिखना है। पाँच श्रेष्ठ लेखों के लिये सुंदर इनाम दिया जायेगा। (यह विभाग भाईयों के लिये)

और धर्मवत्सल बहनों! आपके लिये भी अलग योजना देता हूँ—मानों कि ब्राह्मी-सुंदरी, राजुल या चंदना जैसे कोई आर्जिका माताजी का संग महा भाग्य से आपको मिल जाये, आप वैराग्यपूर्वक उनके साथ रहती हो, उनकी सेवा करती हो और आत्महित की सुंदर चर्चा करती हो—ऐसे आनंदप्रसंग का वर्णन तुम्हें लिखना है। उन माताजी के साथ रहते हुए तथा उनका वैराग्य जीवन देखते हुए आपको कैसी-कैसी भावनायें जगीं? आपने आर्जिका-माताजी से कौन-कौन सी बातें पूछी? और माताजी ने आपको क्या-क्या कहा? यह ८-१० पृष्ठ में आपको लिखने का है। पाँच श्रेष्ठ लेखों के लिये इनाम दिया जायेगा।

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव की खुशहाली में आत्मधर्म-बालविभाग की ओर से यह आयोजन किया गया है; छोटे-बड़े भाई-बहिन सभी इसमें भाग ले सकते हैं। अक्षर स्पष्ट-

सुवाच्य लिखिये, साथ में आपका पूरा पता भी लिखिये। आप अवश्य भाग लेना; लेख लिखते-लिखते आपको बहुत सुंदर ज्ञानभावना तथा वैराग्यभावना जागृत होगी... और 'मुनिराज के संग में' अथवा 'माताजी के संग में' आपको जो आनंद होगा-उसका तो क्या कहना ?

—जय महावीर।

[लेख भेजने का पता : ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, संपादक आत्मधर्म, सोनगढ़-३६४२५०]

(निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में यदि आप भी आपकी ओर से ऐसी कोई इनामी योजना प्रस्तुत करना चाहते हो तो, उसके बारे में संपादक से संपर्क करें।)

❋ भूकम्प से बड़ी हलचल ❋

भूकम्प : हिमालय में

❀ हिमालय में बड़ी दरारें पड़ी।
❀ नदी ने प्रवाह की दिशा पलट दी।
❀ नवीन तालाब का सर्जन हुआ
❀ कितने ही गाँव नष्ट हो गये।

भूकम्प : आत्मा में

❀ मोह के पहाड़ में दरार पड़ी।
❀ परिणति ने प्रवाह बदल दिया।
❀ शान्तरस के तालाब का सर्जन हुआ।
❀ कितनी ही कर्मप्रकृति नष्ट हुई।

अभी समाचार-पत्रों में बड़ी हलचल का समाचार आया था कि तारीख १९ जनवरी को हिमाचल प्रदेश में भूकंप होने पर एक नदी के प्रवाह की दिशा ही पलट गई; एक नया ही सरोवर बन गया; हिमालय के पहाड़ में हजारों गज लम्बी दरार पड़ गई; कितने ही ग्राम परास्त हो गये।

एक छोटा सा भूकंप होने पर कितनी बड़ी हलचल हो जाती है, वह जगत के देखने में

आती है.... उसीप्रकार आत्मा जब अपना हित करने के लिये मोहकर्म के ऊपर शुद्धोपयोगरूप वज्र का प्रहार करता है और उसे सम्यग्दर्शन होता है, तब उसके अंतर में असंख्य चैतन्यप्रदेशों में अभूतपूर्व भूकंप से कितना बड़ा परिवर्तन हो जाता है—वह ज्ञानी ही जानते हैं।—और ऐसे धरतीकंप का समाचार लौकिक अखबारों में तो कहाँ से आवे? अपना यह 'आत्मधर्म' एक ही ऐसा पत्र है—जो कि ऐसे अभूतपूर्व धरतीकंप का समाचार देने की क्षमता रखता है।

एक अपूर्व धन्य पल में चैतन्य के असंख्य प्रदेशों की धरती में सम्यग्दर्शनरूप भूकंप होने पर मोहरूप-हिमालय में इतनी बड़ी दरार पड़ गई कि वह अब कभी सांधी नहीं जा सकती। जैसे पर्वत के दो टुकड़े हो जाये, फिर उन्हें जोड़ा नहीं जा सकता, वैसे भेदज्ञानरूपी भूकंप के द्वारा ज्ञान और राग के बीच की सांध टूटकर दो टुकड़े हो गये हैं, उनमें फिर एकता नहीं हो सकती। सम्यग्दर्शनरूपी भूकंप होते ही आत्मा की परिणति ने प्रवाह बदल दिया—पर की ओर बहनेवाला प्रवाह सुलटकर अब अंतर की ओर ढलने लगा। पहले जहाँ कषाय का धीकता रेगिस्तान था वहाँ, अब शांति का सरोवर बन गया। अनंतानुबंधी कषायों से बसे हुए सभी ग्राम (मिथ्यात्वादि कर्म) नष्ट हो गये। पूरा हिमालय टूक-टूक होकर उड़ जाये, इससे भी बड़ा भूकंप चैतन्य के असंख्य प्रदेश में सम्यक्त्व अनुभूति होने पर हो जाता है; परंतु यह परिवर्तन अंतर की अनुभूति में ही दिखता है; महान खलबली मच जाती है। इस धरतीकंप का एक छोटा सा धक्का भी सारे संसार-समुद्र को उलटकर उसके स्थान में सिद्धपद का शिखर खड़ा कर देने की ताकत रखता है। बाह्य के तीन लोक की खलबली से भी बड़ी, उस समय चैतन्य के आनंद की कोई अनोखी हलचल हो जाती है। वाह, सम्यक्त्व के समय होनेवाले चैतन्य के इस भूकंप की क्या बात!

पढ़िये और खोजिये—

स्वाध्याय-प्रेरक इस योजना में आप उत्साह से भाग ले रहे हो—इसके लिये धन्यवाद! सभी का उत्तर सही आता है। गतांक का दसवाँ वाक्य जिस पृष्ठ में छपा है, उसी पृष्ठ में वह है, अन्यत्र नहीं है—पाठकों ने इसके लिये भी भरसक प्रयत्न किया। यह अंक छोटा होने से इस वक्त पाँच ही वाक्य खोजने का है;—पढ़िये और खोजिये।

१. सावधान होकर आत्मसाधना करते-करते वे बन जाते हैं परमात्मा।

२. श्री अरिहंतदेव ने नमस्कार हो; श्री सिद्धभगवान ने नमस्कार हो।

३. हमको मोक्षमार्ग में ले जानेवाले नेता भी आप ही हो।

४. आत्मा के मोक्ष के लिये मेरा अवतार है।

५. 'धर्मचक्र' शब्द इस अंक में कितनी बार आया है ?

—०—०—

सोनगढ़ में कहान-राहत केन्द्र की ओर से-
गायों के घासचारे के लिये एक छोटीसी अपील

इस साल दुष्कालग्रस्त परिस्थिति के कारण सोनगढ़ में गायों को घासचारा दिया जाता है। अभी चार मास तक यह प्रवृत्ति चलाने के लिये पच्चीस हजार रुपये की आवश्यकता है। जो दाता एक दिन का पूरा खर्च देना चाहे वे रुपये ३०१) भेज सकते हैं। फुटकर रकम की निम्न नाम से भेजें—

श्री कहान राहत केन्द्र-ट्रस्ट

द्वारा श्री जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ३६४२५०

निर्वाण-महोत्सव में हमारा कर्तव्य

(सम्पादकीय)

भगवान महावीर के निर्वाण का २५०० वर्षीय महोत्सव चल रहा है; प्रभु का धर्मचक्र भारत में घूम रहा है; भारत की जनता महान उल्लास दिखला रही है। उत्सव मनानेवाले हम जैनों की सबसे अधिक जिम्मेदारी है, मुख्य जिम्मेदारी यह है कि हमारे वीतराग भगवान के उत्सव में हम सबमें भी वीतरागभाव की ही वृद्धि हो; उत्सव के वर्षभर के कार्यक्रम में, प्रचार में कहीं भी ऐसा न हो कि आपस में कटुता होवे, अपितु पुरानी कटुता हो तो वह भी दूर होकर परस्पर धर्मवात्सल्य बढ़ें, ऐसा करके हमें महोत्सव की सान बढ़ाना है। कहीं नामादिक का भी ऐसा आग्रह रखना उचित नहीं है—कि जिससे समाज के वातावरण में क्षोभ होने की संभावना हो। जिनबिंबों के स्थापन में भी, वह किसके द्वारा स्थापित की गई, यह बात महत्व की नहीं है, महत्त्व इस बात का है कि वह जिनबिंब सर्वज्ञ-वीतरागता का प्रतीक है; आज भी अनेक जगह चतुर्थकालीन जैसी जिनमूर्तियाँ दिखती है-जिस पर नामादिक का कोई उल्लेख न रहते हुए भी जो सर्वज्ञता-वीतरागता की अतिशय प्रेरणा दे रही हैं। इसप्रकार जिनबिंब-स्थापन का यह मूल उद्देश है-उसे भूलना नहीं चाहिए। पूज्य गुरुदेव ने भी कई बार कहा है कि अपने को नामादिक का आग्रह नहीं है; अपने को तो मूर्ति देखकर सर्वज्ञ-वीतरागस्वभावी आत्मा का स्मरण-बहुमान करना है।

बस, जब हम सभी का एक ही उद्देश्य है—तब क्लेश का कारण ही कहाँ? जब आज भिन्न-भिन्न संप्रदायवाले भी परस्पर सहकार भावना से रहते हैं और उसमें सबकी शोभा है, तब फिर हम एक ही संप्रदायवाले सब हिल-मिलकर परस्पर सहकार भावना से रहकर उत्सव की सान बढ़ावे, तभी हमें उत्सव का आनंद मिलेगा।

याद रहे-हमारे भगवान का उत्सव मना करके हमें भी उनके मार्ग पर जाना है; हम सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा भगवान के मार्ग में जितना चलेंगे उतनी ही उत्सव की सफलता होगी; यदि भगवान का मार्ग ही न रहा तो फिर उत्सव किसका? लाखों की जनसंख्या या करोड़ों रुपयों का इकट्ठा होना—इतना महत्त्व का नहीं है जितना कि दो-पाँच व्यक्ति भी सम्यक्त्वभाव को प्राप्त करें। 'सम्यक् भावों की प्राप्ति यही महावीर का सच्चा महोत्सव'—यह मंत्र को न भूलकर भगवान का उत्सव मनायें। — जय महावीर

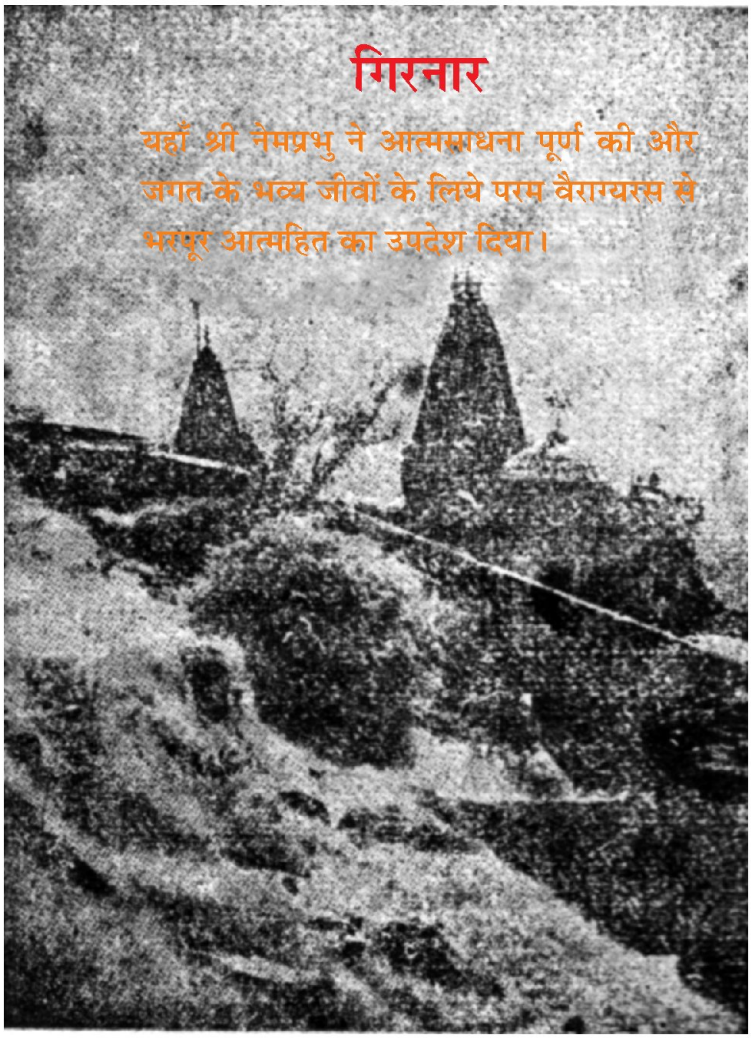

वाह गिरनार वाह! ७२०००,७०० (बहत्तर करोड़-सात सौ) मोक्षगामी महात्माओं की चरणरज को अपने सिर पर चढ़ाकर तू भी जगपूज्य बन गया है; तूने करोड़ों मुनिवरों की आत्मसाधना को साक्षात् देखा है; तेरी उन्नति के द्वारा तू हमें भी नेमिनाथ प्रभु के उन्नतमार्ग की प्रेरणा दे रहा है। नेमिनाथप्रभु के सान्निध्य के कारण तू भी श्यामवर्ण से सुशोभित बन गया है। तेरे मस्तक के मुकुट के समान यह पाँचवीं टोंक-उसमें टंकोत्कीर्ण नेमिजिन का बिंब मुकुटमणि के समान सुशोभित हो रहा है। धन्य है तेरे को, कि तू भगवान के भाव-मंगल को झेलकर क्षेत्रमंगल बना है... और हमको मंगलमार्ग की प्रेरणा दे रहा है। — जय गिरनार

मेरे नेमपिया गीरनार चले

जोग धरूँगी... बाबुल हट तजो... जूठा है संसार... बाबुल हट तजो... १
जोग विसारो... बेटी राजमती... मत जाओ गीरनार... बेटी राजमती... २
ये संसार असार है बाबुल... मोहजाल दु:खभार... बाबुल हट तजो... ३
और ढुँढाऊँ वर अति सुंदर... धन वैभव बलकार... बेटी राजमती... ४
पति सती के एक ही होता... और पिता सुत भ्रात... बाबुल हट तजो... ५
जब लग सात फिरे नहीं फेरे... तब लग कुँवारी मान... बेटी राजमती... ६
ये सब थोथी बातें बाबुल... कुल-मर्याद विचार... बाबुल हट तजो... ७
जीवन में सुखभोग भोग क्यों... दे रही मूढ विसार... बेटी राजमती... ८
भोग रोग का घर है बाबुल... भोग नरक को द्वार... बाबुल हट तजो... ९
ये यौवन... ये रूप संपदा... मिले न बारंबार... बेटी राजमती... १०
हाड-मांस का चाम चमक... क्षण में विणसनहार... बाबुल हट तजो... ११
क्या यही है धर्म सुता का... करे पिता से राड... बेटी राजमती... १२
राड नहीं, है धर्म सती का... हितकर धर्म चितार... बाबुल हट तजो... १३
कठिन जोग तप त्याग है बेटी... फिर से सोच विचार... बेटी राजमती... १४
धन्य 'सौभाग्य' मिला संयम का... सफल करूँ पर्याय... बाबुल हट तजो... १५
धन्य है तेरी दृढ़ता बेटी... जाओ खुशी गीरनार... देवी राजमती... १६

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) माघ (३५८)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति ३०००